पुस्तक प्राप्ति स्थान
M/s गोपीचंद सरदार मल एण्ड संस
चांदपोल अनाज मण्डी, जयपुर (राज.)

मुद्रक – श्याम प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
1230, अचार वालो की गली, गोपाल
जी का रास्ता जयपुर ✆ 563481

अनुक्रमणिका

भारतीय श्रुत-दर्शन केन्द्र
जयपुर



चांद खेडी के श्री ऋषभ देव भगवान

जिनवाणी की स्तुति

करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमण का ॥ टेक ॥
अकेला ही हूँ मैं, करम सब आये सिमट के।
लिया है मैं तेरा, शरण अब माता सटक कें॥
भ्रमावत है मोकों, करम दुख देता जनम का॥ करो ॥१॥

दुखी हुआ भारी, भ्रमत फिरता हूं जगत मे।
सहा जाता नाही, अकल घबड़ाई भ्रमण में॥
करों क्या माँ मेरी, चलता वश नाही मिटन का ॥ करों ॥२॥

सुनो माता मेरी, अरज करता हू दरद में।
दुखी जानो मोको, डरप कर आयो शरण मे॥
कृपा ऐसी कीजे , दरद मिट जावे मरण का ॥ करो ॥३॥

पिलावे जो मोको, सुबुधि कर प्याला अमृत का।
मिटावे जो मेरा, सरब दुख सारे फिरन का ॥
परो पावो तेरे, हरो दुख भारी फिकर का ॥ करों ॥ ४॥

टेक -मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को,
आपा पर भासवे को, भानुसी बखानी है।
छहों द्रव्य जानवे को, बध विधि मानवे को,
स्वपर पिछानबे को, परम प्रमानी है॥ ५॥
अनुभव बतायवे को, जिय के जतायवे को,
काहू न सतायबे को, भव्य उर आनी है।
जहा तहा तारवे को, पार के उतारवे को,
सुख विस्तारवे को ये ही जिनवाणी है ॥६॥

दोहा-जिनवाणी की स्तुति, अल्पबुद्धि परमान।
'पन्नालाल ' विनती करे, देहु मात मोहि ज्ञान ॥७॥

प्रस्तावना

चौरासी लाख योनियो में मनुष्य जन्म की सार्थकता इसीलिए है कि इस योनी से जीव अपना कल्याण कर सकता है। अपने कर्मो की निर्जरा कर सकता है। भक्त से भगवान बन सकता है। प्रत्येक धर्म में चाहे वह निवृति प्रधान हो या प्रवृत्ति प्रधान धार्मिक क्रियाओ का विशिष्ठ महत्व है। धार्मिक क्रियाओ मे पूजा पाठ के महत्व को सभी जानते हैं जैन परम्परा मे धर्म का साक्षात फल आत्म विशुद्धि है, और इसकी उच्चतम अवस्था का नाम ही मोक्ष है। देव-दर्शन, पूजा, स्वाध्याय, तीर्थाटन, मुनि भक्ति, वैयावृत्य आदि सभी धार्मिक क्रियाओ का एक मात्र लक्ष्य मोक्ष अवस्था को प्राप्त करना ही है।

जैन धर्म में भगवान का स्वरूप वीतराग व वीत द्वेष रूप हैं अत: उन्हें न पूजा से कोई प्रयोजन है, न निन्दा से वे अप्रसन्न होते है फिर भी उनके पुण्य गुणो का स्मरण हमारे चित्त को पाप की कालिमा से बचाता ह। यही पूजा का उद्देश्य है। अत: हम स्वय का जितना भी उपयोग पूजा वन्दना वैयावृत्य मे लगा सके उतना ही श्रेयस्कर है।

जैन परम्परा मे पुरूपार्थ का महत्व है। किसी की दया या कृपा का कोई स्थान नहीं है। जितने भी तीर्थकर हुये वे क्षत्रिय थे। उन्हे मोक्ष किसी की कृपा या आशीर्वाद से प्रास नहीं हुआ। स्वय के गुणो को विकसित कर एक एक कदम बढाते हुये उन्होने मोक्ष लक्ष्मी का वरण किया। हमारे लिए उनके द्वारा बतलाया गया मार्ग, मोक्ष मार्ग मे सहायक हो या न हो हमारे व्यावहारिक जीवन को निस्सन्देह सफल व शान्ति प्रदान करेगा। आवश्यकता है कि उनके बताये मार्ग को हम जीवन मे अपनाये।

सभी तीर्थंकरो के जीवन मे ५ मुख्य अवसर होते हैं जिन्हे हम गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, एव मोक्ष कल्याण के रूप मे पूजाओ मे गाते हैं, अर्घ चढाते है, मनाते हैं। हम भी चाहे तो अपने जीवन का कल्याण इसी आधार पर कर सकते हैं जिन्हें हम पाच बेलाओ द्वारा जीवन में उतार सकते हैं। यही वास्तव मे उनकी पूजाओं से प्रास सम्यक-ज्ञान है।

प्रात: सूर्योदय से 45 मिनट पूर्व उठें और उठते ही सबसे पूर्व अपने

बिस्तर में ही ऊँकार ध्वनि को गुंजायित करते हुये नाद करें। परमइष्ट का जाप करें। णमोकार मन्त्र का कम से कम ५ बार मनसा जाप करें। मानों आपका आज गर्भ हुआ है। यह आपका गर्भ कल्याणक है। इसे मंगल वेला भी कहते हैं ।

गर्भ से आने के बाद स्नान करवाया जाता है तो हम भी अपना दैनिक कार्यक्रम स्नानादि से निवृत होकर सूर्योदय से पूर्व देव दर्शन, पूजा , प्रक्षाल के लिए तैयार हो जायें, स्वाध्याय करें एवं इस वन्दन बेला का अच्छे से अच्छा उपयोग किसी सत्कार्य के लिए करें। इस बेला में किया गया शुभ कार्य आपके मंगलमय, शुभ दिन का बीमा होगा यही आपका जन्म कल्याणक है।

जन्म कल्याणक के बाद ही प्रारम्भ होती है पुरूषार्थ की कहानी । अपने सभी कार्य, समय के साथ करें, हम भोजन करने से पूर्व सामायिक करें, दिन भर के करने वाले कार्यो पर विचार करें, भोजन करके जुट जायें अपने कार्यक्षेत्र में, इमानदारी से 8 घन्टे तप करने के लिए, अपने लक्ष्य को पाने के लिए, तभी जीवन का तप कल्याणक सार्थक होगा। जीवन खुशियों से भर देगा ।गृहस्थाश्रम का कर्तव्य पूर्ण होगा, इसे सामायिक बेला कहते हैं।

तप कल्याण के द्वारा ८ घन्टे की पूर्ण श्रद्धा से किया कार्य आपको ज्ञान प्रदान करेगा अर्थात् आपके परिवार ओर आपके लिए सुख समृद्धि के द्वार खुल जायेगे। ज्ञान प्राप्त होते ही मन के विकल्प, अज्ञान तिरोहित हो जायेंगे।उस समय कुछ समय के लिए आप प्रतिक्रमण करें, लौटे, शान्त चित्त बैठ कर दिन भर में होने वाली त्रुटियो, गल्तियों पर ध्यान दें। प्रायश्चित करें। भविष्य में उन गल्तियो को न दोहराने का संकल्प करें, यही ज्ञान कल्याणक है इसे प्रतिक्रमण बेला कहते हैं। अब आती है बारी मोक्ष कल्याण की, हम भी हमारे जीवन में ही मोक्ष कल्याण प्रति दिन मना सकते हैं। सोने से पूर्व सबसे मैत्री करके अपराधों को मन से क्षमा करके तथा सबसे क्षमा मांग कर सुखद नींद सो जायें, पता नहीं जीवन की फिर सुबह हो न हो ।

सुबह यदि पुनः आवे तो परम इष्ट परमात्मा का धन्यवाद करते हुये कृतज्ञता अर्पित करे कि पुनः अवसर मिला और पुनः उसी क्रम से जीवन जीये। शुभ कर्मो का बन्ध होगा। यह सब क्रियाएं ओपचारिकता वश नहीं, पूर्ण भाव से करें।

सभी प्राणी सुख चाहते है, दु:ख से व्याकुल हो जाना उनका स्वभाव है, मानव भी इसी उधेड बुन मे है कि कैसे सुख प्राप्त हो इसी दिशा मे प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने स्तर से मोच रहा है कार्य कर रहा है । सबने सुखो की परिभापाऐ पृथक पृथक बना रखी है किन्तु सुख मनुष्य की छाया की तरह है कि आगे ही आगे बढता जाता है ।

लाखो वैज्ञानिक आविष्कारो ने मानव जाति का हित किया है । भौतिक सुख मे अभिवृद्धि की है । लेकिन ये सब सुख अस्थाई है । शाश्वत नहीं है । मोक्ष की अभिलापा भी शाश्वत सुख की प्राप्ति की ही अभिलापा है ।

यह सब हमे कैसे प्राप्त हो, कौन हमे यह मार्ग वता सकता है ? किस गुरू की शरण से हमारा कल्याण हो सकता है ? यह जिज्ञासा सदैव रहती है । मृग तृष्णा की भाति मानव इधर उधर सुख की तलाश मे जाता है किन्तु अन्त मे हाथ लगती है निराशा ।

फिर शाश्वत सुख कैसे प्राप्त हो, कौनसा मार्ग चुने, किसकी शरण मे जाये प्रश्न उठना स्वाभाविक है ।

इस अवसर्पणी काल मे अरिहन्तो का साक्षातकार, समागम सम्भव नहीं है अत: पूर्व मे हुये अरिहन्तों की वाणी, देव शास्त्र गुरु ही शाश्वत शरण है जिनकी बतायी हुयी वीतराग वाणी से हम स्वय का कल्याण कर सकते है ।

प्रस्तुत पुस्तक शाश्वत शरण में देव शास्त्र गुरु द्वारा दी हुई वाणी एवं उनके गुणो का सकलन है, जिसके नियमित अध्ययन, पूजापाठ से निश्चित ही रागद्वेष, कपाय मन्द होते है मन मे स्फूर्ति एवं उर्जा जाग्रत होती है । अत: सुख प्राप्ती के लिए यही शाश्वत शरण है ।

यह पुस्तक सबके लिए मंगलमय हो, सबका कल्याण करे इसी भावना से समर्पित है ।

जयपुर २६ जून १९९६ — *महावीर कुमार रारा*

दो शब्द

१३ जून १९९६ की को मध्य रात्रि में अचानक टेलीफोन की घन्टी बजी। टेलीफोन पर श्री सरदार मलजी पाटनी की हृदय आघात से मृत्यु के समाचार ने हतप्रभ कर दिया, रात्रि 11 बजे पूर्ण स्वस्थ छोड कर आये श्री सरदारमलजी के इस असामयिक निधन से जीवन की नश्वरता एव काल की क्रूरता सहज ही प्रगट हो गई ।

११ अगस्त १९२५ को श्री गैन्दी लालजो पाटनी (दिल्ली वाले) के यहा जन्मे श्री पाटनी जी अपने जीवन मे अत्यन्त धार्मिक एव सादगी पसन्द रहे, पूजा पाठ, प्रक्षाल, स्वाध्याय, प्रवचन सुनना आदि आपके जीवन की नियमित चर्या रही, जिसका अन्त समय तक आपने निर्वहन किया । आचार्य श्री शान्ति सागर जी महाराज, श्री वीर सागर जी महाराज से आपने छोटी सी उम्र में ही रात्रि में पानी तक के त्याग ले लिये । आपकी रुचि मुनिराजो के चौके लगाने, तीर्थ यात्रा करने की सदैव रही। व्यवसाय जगत मे भी आपने बहुत नाम कमाया तथा सभी व्यवसाई आपको आदर की दृष्टि से देखा करते थे। आपके पुण्य का ही प्रताप था कि आपने अपने घर को गुलिस्तां बना दिया, हर तरह से उन्नति के शिखर पर पहुंचाने वाले ऐसे घर के सरदार श्री सरदारमलजी ने मृत्यु से भी कोई सघर्प नहीं किया, मृत्यु आई और आपने उसका सहर्प वरण किया।

आपकी शिक्षा दीक्षा जयपुर मे ही हुई । उस समय जब कि अध्ययन की ओर लोगों का कम रूझान था, आपने बी. ए कामर्स की स्नातक डिग्री प्राप्त की । आपका अपने बड़े भ्राता श्री गोपीचंदजी पाटनी से बहुत लगाव रहा। दोनो भाई हर कार्य आपस की सलाह से करते थे। एक सी वेश भूपा पहिनते थे। यहां तक कि लोग इन्हे राम लक्ष्मण की जोडी भी कहते थे।

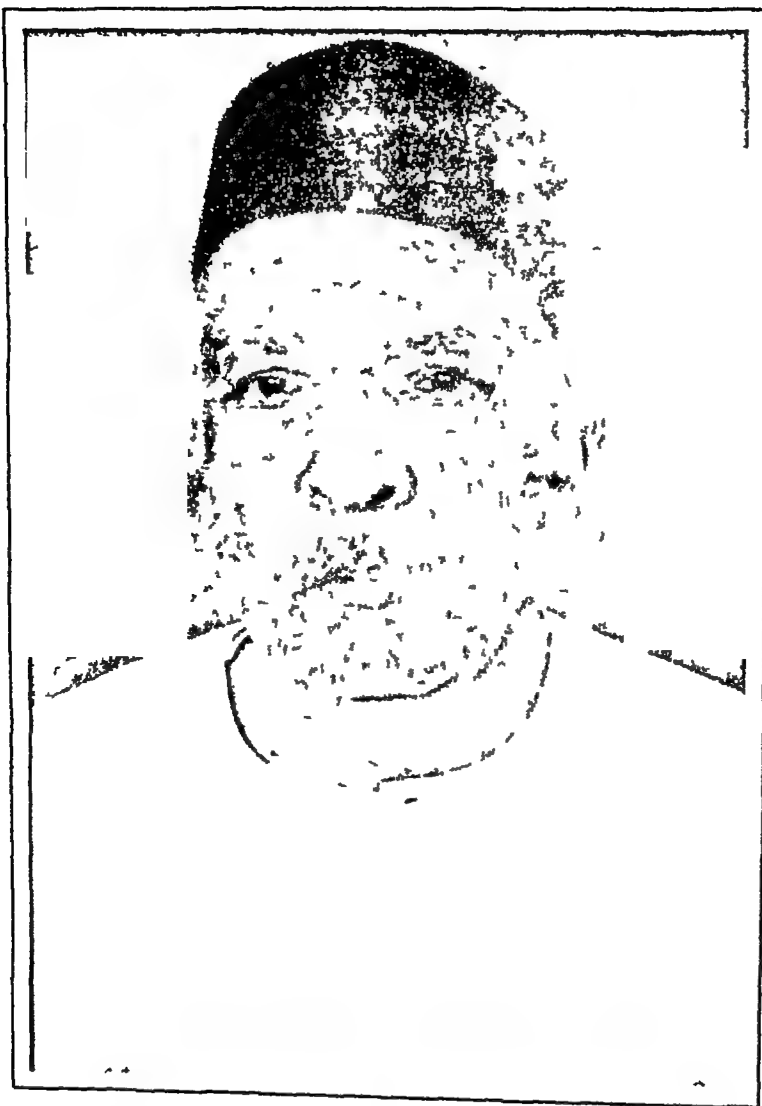
१९८६ मे आप घी वालों के रास्ते को छोड कर जनता कालोनी आ गये प्रमुख व्यवसाय रामगंजमण्डी में था जिसे आप पूर्व में सम्भाला करते थे। आपने व्यवसाय में अधिक उन्नति कर प्राप्त धन का आहारदान,

औषधदान, वैयावृत्य, मुनिसेवा में सद् उपयोग किया, अनेको बार यात्रा की और लोगो को स्वाध्याय और यात्राओं के लिए प्रेरित किया।

श्री पाटनीजी का विवाह स्व श्री पांचू लालजी सघी की सुपुत्री सरदार देवी से १९४२ में हुआ । आपके दो पुत्र एवं तीन पुत्रियां हुई जिनका विवाह आदि आपने बहुत अच्छी तरह संभ्रांत परिवारो मे किया । आपके दोनों लडके काफी होनहार, मातृ-पितृ भक्त, धार्मिक संस्कारो से युक्त आपके ही व्यवसाय को कर रहे हैं, तथा उसमे दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि कर रहे हैं। आपके ही गुणो से समृद्ध , व्यसनों से दूर आपके लडको पर हर कोई गर्व कर सकता है।

आप अपने पीछे भरा पूरा परिवार श्री गोपीचद पाटनी आपके (अग्रज भ्राता) श्रीमती सरदार देवी आपकी धर्मपत्नि (भ्राता श्री राजमल, सुनील संघी) के अतिरिक्त श्री निर्मल कुमार, ललित कुमार (पुत्र) नितिन पाटनी (पौत्र) पुत्र वधु श्रीमती पुष्पा (ध प निर्मल कुमार) श्रीमती सुनीता (ध. प ललित कुमार) पौत्रियां श्वेता, शिल्पा, गरिमा व पुत्रियां श्रीमती सितारा (ध प श्री एम पी जैन) श्रीमती सुशीला (ध प श्री महावीर कुमार रारा) श्रीमती सुषमा (ध प श्री अशोक कुमार सोगानी) पौत्रियां डा नूपूर (ध. प श्री डा अतुल कासलीवाल) व रूपल (ध प श्री विकास पह्राडिया) को अपने अधूरे कार्यो को पूरा करने व धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देकर दिवगत हो गये । आप मित भाषी, गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे । आपका अन्तर्मन साफ था इसीलिए बिना कष्ट पाये इस नश्वर शरीर को त्याग दिया । उनकी आत्मा को शान्ति मिले यही प्रभु से कामना करते हैं ।

जयपुर 26, जून 1996 *राजमल सघी*



स्वर्गीय श्री सरदार मल जी पाटनी
(जन्म 11 अगस्त 1925 – स्वर्गवास 14 जून 1996)



卐 भगवान महावीर 卐

णमोकार मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ॥

णमोकार मंत्र की महिमा

एसो पंचणमोयारो, सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मगलम् ॥

मंगलोत्तमशरण पाठ

चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।
चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंतालोगुत्तमा, सिद्धालोगुत्तमा,
साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

दर्शन पाठ [भाषा]

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरण आयो शरणजी ।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरणजी ॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकारजी ।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकारजी ॥
भव विकट बन मे करम बैरी, ज्ञान धन मेरो हरय्यो ।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिरय्यो ॥
धन घडी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो ।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुजी को लख लयो ॥
छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरै ।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण जुत, कोटि रवि छवि को हरै ॥
मिट गयो तिमिर-मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो ।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रक चिंतामणि लयो ॥
मै हाथ जोड नवाय मस्तक, बीनऊँ तुव चरणजी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारण तरणजी ॥
जाचूं नही सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथजी ।
'बुध' जाचहूँ तुव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथजी ॥

दर्शन-स्तुति

निरखत जिनचन्द्र-बदन स्व-पद सुरुचि आई ।
प्रगटी निज आन की पिछान ज्ञान भान की ।
कला उद्योत होत काम-जामनी पलाई ॥ निरखत. ॥
शाश्वत आनन्द स्वाद पायौ विनस्यौ विषाद ।
आन मे अनिष्ट-इष्ट कल्पना नसाई ॥ निरखत. ॥
साधी निज साध की समाधि मोह-व्याधि की ।
उपाधि को विराधी कै आराधना सुहाई ॥ निरखत. ॥
धन दिन छिन आज सुगुनि चिते जिनराज अबै ।
सुधरे सब काज 'दौल' अचल रिद्धि पाई ॥ निरखत. ॥

ॐ

ॐ ॐ

ॐ ॐ ॐ

बन्दना

ॐ, ॐ, ॐ ओम नम: सिद्धेभ्य:, ओम नम. सिद्धेभ्य:, ओम नम: सिद्धेभ्य:

लोकाकाश के अग्रभाग मे अनन्त सिद्धात्माये, बुद्ध आत्माये, शुद्ध आत्माये विराजित है और अनन्त काल तक विराजित रहेगी, उन सभी सत् चित् आनन्द रूप, सिद्ध आत्माओ को, बुद्ध आत्माओ को, शुद्ध आत्माओ को मेरा मन से, वचन से, काय से त्रिकाल वन्दना, साष्टाग प्रणाम, बारम्बार नमन, बारम्बार नमन, बारम्बार नमन ।

नम. श्री वर्धमानाय: निर्धूत कलिलात्मने ।
सालोकानाम् त्रिलोकानाम् यद्विद्या दर्पणायते ॥
मगल भगवान् अर्हत, मगल भगवान् जिन: ।
मगल प्रथमाचार्यो मगल ऋषमेश्वर: ॥
मगल वृपमेश्वर: मगल परमेश्वर: ।
मगल भगवान वीरो मंगलं गौतमोगणी ।।
मगल कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मगल ।
शुद्ध धर्मोस्तु मगलं, विश्व धर्मोस्तु मगल ॥
मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तार कर्म भू भ्रताम ।
ज्ञातार विश्व तत्वानाम्, वन्दे तद्गुण लब्धये ।
वन्दे सद्गुण लब्धये:, वन्दे निजगुण लब्धये ॥
अज्ञान तिमिरान्धानाम्, ज्ञानाञ्जन शलाकया ।
चक्षु: उन्मीलितं येन: तस्मै: श्री गुरवै नम: ॥

ओकारं बिन्दु सयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः ।
ओंकाराय नमो नमः, ओकाराय नमो नमः ॥

सबका मगल हो, सबका भला हो, सबका कल्याण हो ।
सब सुखी हो, सर्वत्र शान्ति हो, शान्ति हो, शान्ति हो ॥
सिद्धि साध्ये सतामस्तु प्रसादात् परमेष्ठिन. ।
ॐ सर्व शान्तिः शान्तिः शान्ति ।
ॐ सर्व सिद्धि, सर्व सिद्धि, सर्व सिद्धि ।
ॐ सर्व समाधि, सर्व समाधि, सर्व समाधि ॥



कालचक्र गतिमान

गतिशील करें इन चरणों को मंजिल पास नहीं है ।
और काल चक्र गतिमान, समय तेरा दास नही है ।
जो करना है, सो अब करले, ना छोडे इसको कलपर ।
कल आये या न आये, इसका विश्वास नहीं है ॥ और कालचक्र
तेरी मेरी में पड़करके, मानव क्यों जनम गवाता है,
तू चेत अरे इन्सान, समय तेरे पास नहीं है ॥ और कालचक्र ... .
इक इक पल को सार्थक करलें, मन में विश्वास जमाएं ।
आने वाले श्वासों का पल भर विश्वास नहीं है ॥ और कालचक्र

अभिषेक पाठ

मैं परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को भाव से वन्दन करूँ।
मन वचन काय, त्रियोग पूर्वक शीश चरणो में धरूँ॥१॥
सर्वज्ञ केवलज्ञानधारी की सुछवि उर में धरूँ।
निर्ग्रन्थ पावन वीतराग महान की जय उच्चरूँ॥२॥
उज्जवल दिगम्बर वेश दर्शन कर हृदय आनन्द भरूँ।
अति विनय पूर्वक नमन करके सफल यह नरभव करूँ॥३॥
मैं शुद्ध जल के कलश प्रभु के पूज्य मस्तक पर करूँ।
जल धार देकर हर्ष से अभिषेक प्रभु जी का करूँ॥४॥
मैं न्हवन प्रभु का भाव से कर सकल भवपातक हरूँ।
प्रभु चरणकमल पखारकर सम्यक्त्व की सम्पत्ति वरूँ॥५॥

जिनेन्द्र-अभिषेक-स्तुति

मैंने प्रभु के चरण पखारे।
जनम, जनम के संचित पातक तत्क्षण ही निरवारे॥१॥
प्रासुक जल के कलश श्री जिन प्रतिमा ऊपर ढारे।
वीतराग अरिहंत देव के गूँजे, जय जयकारे॥२॥
चरणाम्बुज स्पर्श करत ही छाये हर्ष अपारे।
पावन तन, मन, नयन भये सब दूर भये अंधियारे॥३॥

भजन

बडे भाग्य से आऐ है हम जिनवर के दरबार मे
बडे भाग्य से आये है हम जिनवर के दरबार मे,
हम अनादि से दुखिया व्याकुल चारो गति मे भटक रहे
निज स्वरूप समझे बिन स्वामी भव अटवी मे अटक रहे
भेद ज्ञान बिन पडे हुये है पर के सोच विचार मे॥ वडे भाग्य॥१॥
महा पुण्य संयोग मिला तो शरण आपकी पाई है।
आज आपके दर्शन करके निज की महिमा आई है
भव सागर से पार करो प्रभु हमको अब की बार मे ॥ वडे भाग्य॥२॥
दर्शन ज्ञान चरित्र शील तप के आभूषण पहिनादो
चार अनन्त चतुष्टय की शोभा से स्वामी सजवा दो।
अष्ट स्वगुण प्रगटाऊँस्वामी फिर न वहू मझधार में॥ बडे भाग्य॥३॥

विनय पाठ

दोहा-इह विधि ठाडो होय के, प्रथम पढे जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म-जु आठ॥१॥
अनन्त चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सिरताज।
मुक्तिवधू के कथ तुम तीन भुवन के राज॥२॥
तिहु जग की पीडा हरन भवदधि शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिव सुख के करतार॥३॥
हरता अघ-अन्धियार के, करता धर्म प्रकाश।
थिरतापद दातार हो, धरता निज गुण राश॥४॥
धर्मामृत उर जलधिमो, ज्ञान-भानु तुम रूप।
तुमरे चरण सरोज को, नावत तिहुं जग भूप॥५॥
मैं वन्दो जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव।
कर्मबन्ध के छेदने, और न कछु उपाय॥६॥
भविजन को भवकूपतें, तुमही काढनहार।
दीनदयाल अनाथपति, आतम गुण भण्डार॥७॥
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म रज मैल।
सरल करी या जगतमे भविजनको शिव गैल॥८॥
तुम पद-पकज पूजते विघ्न रोग टल जाय।
शत्रु मित्रता को धरे, विष निरविषता थाय॥९॥
चक्री खगधर इन्द्रपद, मिले आपतैं आप।
अनुक्रम कर शिवपद लहैं नेम सकल हनि पाप॥१०॥
तुम विन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल विन मीन।
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन॥११॥
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अञ्जन से तारे प्रभू, जय जय जय जिनदेव॥१२॥

थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेव।
खेवटिया तुम हो प्रभू, जय जय जय जिनदेव॥१३॥

राग सहित जग मे रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबै, मेटो राग कुटेव॥१४॥

कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यच अज्ञान।
आज अन्य मानुप भयो, पायो जिनवर थान॥१५॥

तुमको पूजे सुरपती, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव॥१६॥

अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भवसिधु मे, खेय लगाओ पार॥१७॥

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारके, कीजे आप समान॥१८॥

तुमरी नेक सुदृष्टितैं जग उतरत हं पार।
हा हा डूब्यो जात हूँ नेक निहार निकार॥१९॥

जो मैं कहहू और सो तो न मिटे उरझार।
मेरी तो तोंसो वनी तातैं करो पुकार॥२०॥

वन्दौं पाँचो परम गुरु, सुर गुरु वन्दत जास।
विघन हरन मगल करन, पूरन परम प्रकाश॥२१॥

चौवीसो जिनपद नमो, नमो शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यो पाठ सुखदाय॥२२॥

यदि तुम्हें ऐसा आदमी मिल जाय जो बिना कहे ही चित्त की बात परख सकता हो, तो बस इतना ही पर्याप्त है कि तुम उसकी ओर एक दृष्टि भर देख लो, तुम्हारी सब इच्छायें पूर्ण हो जायेगी।

पूजन प्रारम्भ

ॐ जय जय जय। नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।
णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाण।
णमो उवज्झायाण, णमो लोये सव्वसाहूण ॥१॥

ॐ ह्री अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नम । (पुष्पांजलि क्षेपण करना) चत्तारि मङ्गल-अरिहता मङ्गल, सिद्धामगल, साहू मङ्गल, केवलिपण्णत्तो धम्मो मङ्गल। चत्तारि-लोगुत्तमा-अरिहता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरण पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्दे सरण पव्वज्जामि, साहू सरण पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्त धम्म सरण पव्वंजामि ॥ॐ नमोऽर्हते स्वाहा। (पुष्पाजलि)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोपि वा।
ध्यायेत् पञ्चनमस्कार सर्वपापै. प्रमुच्यते ॥१॥
अपवित्र. पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मान स बाह्याभ्यन्तरे शुचि ॥२॥
अपराजित-मन्त्रोऽय सर्वविघ्न-विनाशनः।
मङ्गलेपु च सर्वेषु प्रथम मङ्गल मत· ॥३॥
एसो पञ्च णमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मङ्गलाण च सव्वेसि पढम होइ मगल ॥४॥
अर्हमित्यक्षर ब्रह्म-वाचक परमेष्ठि न·।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यह ॥५॥
कर्माष्टकविनिर्मुक्त मोक्षलक्ष्मी-निकेतन।
सम्यक्त्वादिगुणोपेत सिद्धचक्र नमाम्यह ॥६॥
विघ्नौघाः प्रलय यान्ति शाकिनी-भूतपन्नगा·।
विपं निर्विपता याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥७॥

(यहा पुष्पाजलि क्षेपण करना चाहिये)

(यदि अवकाश हो तो यहाँ पर सहस्रनाम पढकर दश अर्घ देना चाहिये नही तो नीचे श्लोक पढकर एक अर्घ चढावे।)

उदक-चन्दन-तन्दुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकै·।
धवल-मगल-गान-रवाकुले जिनगृहे जिननाममहयजे ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिन-सहस्रनामेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ स्वस्ति मंगल ॥

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्त्रयेश, स्याद्वाद-नायकमनंत-चतुष्ट यार्हंम
श्रीमूल संघ-सुदृशां सुकृतैकहेतु-जैनेन्द्रयज्ञ विधि रेप मयाऽभ्यधायि ॥१ ॥
स्वस्ति त्रिलोकगुरुवे जिनपुङ्गवाय, स्वस्ति-स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय
स्वस्तिप्रकाश-सहजोर्ज्जितदृङ्मयाय, स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय ॥२ ॥ स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोध-सुधाप्लवाय, स्वस्ति स्वभाव-पर भाव-विभासकाय, स्वस्ति त्रिलोक-विततैक चिदुद्गमाय, स्वस्ति त्रिकाल सकलायत-विस्तृताय ॥३ ॥ द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः। आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन् भूतार्थयज्ञ-पुरुपस्य करोमि यज्ञ ॥४ ॥ अर्हत्पुराण-पुरुपोत्तम पावनानि, वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव । अस्मिन् ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ, पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥५ ॥

ॐ ह्रीं विधियज्ञ-प्रतिज्ञानाय जिन प्रतिमाग्रे पुष्पांजलि क्षिपेत्।

श्री वृपभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः।
श्री सम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दनः।
श्री सुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभः।
श्री सुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभः।
श्री पुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतल.।
श्री श्रेयांसः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः।
श्री विमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः।
श्री धर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शान्तिनाथः।
श्री कुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथः।
श्री मल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रतः।
श्री नमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथः।
श्री पार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्द्धमानः।

(पुष्पांजलि क्षेपण करें)

देव-शास्त्र-गुरु पूजा

युगलकिशोर जैन 'युगल' विरचित

स्थापना

केवल रवि-किरणो से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
उस श्री जिनवाणी मे होता तत्वो का सुन्दरतम दर्शन।
सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढते हैं मुनिगण।
उनदेव परम आगमगुरु को, शत-शत वन्दन शत-शत वन्दन॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरूसमूह! अत्र अवतर अवतर सवापट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ. ठ स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वपट् सन्निधिकरणम्।

इन्द्रिय के भोग मधुर विप सम, लावण्यमयी कञ्चन काया।
यह सब कुछ जड़की क्रीडा है, मैं अब तक जान नहीं पाया॥
मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर ममता मे अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा॥१॥

जड चेतन की सब परिणति प्रभु!, अपने अपने मे होती है।
अनुकूल कहे प्रतिकूल कहे, यह झूठी मन की वृत्ति है॥
प्रतिकूल सयोगों मे क्रोधित, होकर संसार बढाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु! चन्दन सम, शीतलता पाने आया है॥

ॐह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो ससारतापविनाशनाय चदन निर्वपामीति स्वाहा॥२॥

उज्जवल हू कुन्द धवल हू प्रभु!, पर से न लगा हू किंचित् भी।
फिर भी अनुकूल लगे उन पर, करता अभिमान निरतर ही॥
जड पर झुक झुक जाता चेतन, की मार्दव की खंडित काया।
निज शाश्वत अक्षय-निधि पाने, अब दास चरणरज मे आया॥

ॐ ह्री श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥३॥

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन मे माया कुछ शेप नहीं।
निज अन्तर का प्रभु! भेद कहू, उसमें ऋजुता का लेश नहीं॥

चिंतन कुछ, फिर सम्भापण कुछ, वृत्ति कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निजमें प्रभु पाऊँ, जो अन्तर का कालुप धोती है॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो कामवाणविध्वसनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

अबतक अगणित जड द्रव्यो से, प्रभु। भूख न मेरी शात हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही॥
युग युग से इच्छासागर मे, प्रभु। गोते खाता आया हूँ।
पचेन्द्रिय मन के पट्-रस तज, अनुपम रस पीने आया हू॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

जग के जड दीपक को अवतक समझा था मैंने उजियारा।
झझा के एक झकोरे मे जो वनता घोर तिमिर कारा॥
अतएव प्रभो। यह नश्वर दीप, समर्पण करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर, दीप जलाने आया हूँ॥
ॐ ह्री श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

जड कर्म घुमाता है मुझको यह मिथ्या भ्राति रही मेरी।
मैं रागीद्वेपी हो लेता, जव परिणति होती जड केरी॥
यो भाव-करम या भाव-मरण, सदियो से करता आया हूँ।
निज अनुपमगंध अनल से प्रभु, पर-गध जलाने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

जग मे जिसको निज कहता मैं, वह छोड मुझे चल देता है।
मैं आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है।
मैं शात निराकुल चेतन हू, है मुक्तिरमा सहचर मेरी।
यह मोह तडक कर टूट पडे, प्रभु सार्थक फल पूजा तेरी।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्ष फलप्राप्ताये फल निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

क्षणभर निजरस को पी चेतन, मिथ्यामल को धो देता है।
कापायिक भाव विनप्ट किये, निज आनद अमृत पीता है॥

अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अरिहन्त अवस्था है॥
यह अर्घ समर्पण करके प्रभु, निजगुण का अर्घ बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु। अर्हन्त अवस्था पाऊँगा॥ ९॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्योऽ अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा॥९॥

जयमाला

भवबन मे जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम-मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा॥
झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाये।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण भगुर पल मे मुरझाये॥
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षणको टाल सकेगा क्या ?
अशरण मृतकाया मे हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या ?
ससार महादुख सागर के प्रभु दुखमय सुख-आभासो मे।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कचनकामिनि-प्रासादो मे॥
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड चले जाते॥
मेरे न हुये ये मे इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हू।
निज मे पर से अन्यत्व लिये, निज समरस पीने वाला हू॥
जिसके श्रृगारो मे मेरा यह, महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड काया से, इस चेतन का कैसा नाता॥
दिन रात शुभाशुभ भावो से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस वाणी अरु काया से, आश्रव का द्वार खुला रहता॥
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणे फूटे, सवर से जागे अन्त-र्बल॥

फिर तप की शोधक वन्हि जगे, कर्मो की कडियां टूट पडें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पडें॥
हम छोड़ चले यह लोक तभी, लोकान्त विराजे क्षण में जा।
निजलोक हमारा वासा हो, शोकांत बनें फिर हम को क्या॥
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो, दुर्नय तम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जावे॥
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी ।
जग मे न हमारा कोई था, हम भी न रहे जग के साथी॥
चरणो मे आया हूं प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे।
सोचा करता हूँ भोगो से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक मे घी डाला॥
तेरे चरणो की पूजा से, इन्द्रिय सुख की ही अभिलाषा।
अब तक ही समझ न पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा॥
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग मे रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तव चरणो में, जग के माणिक मोती सारे॥
स्याद्वाद मयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखो, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं॥
हे गुरुवर! शाश्वत सुख-दर्शक यह शुद्ध स्वरुप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्श कराने वाला है॥
जब जग विषयो मे रच पचकर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ मे विष-कंटक बोता हो॥
हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, बन मे बनचौरी चरते हो।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वो का चिन्तन करते हो॥
करते तप शैल नदी तट पर, तरु तल वर्षा की झडियों मे।
समता रसपान किया करते, सुख-दुःख दोनो ही घडियो में॥

अन्तर ज्वाला हरती वाणी, मानो झडती हो फुलझडियॉ।
भव बन्धन तड-तड टूट पडे खिल जावे अन्तर की कलियॉ॥
तुमसा दानी क्या कोई हो, जगको दे दी जग की निधियॉ।
दिन रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियॉ॥
हे निर्मल दव। तुम्हे प्रणाम, हे ज्ञान दीप आगम। प्रणाम।
हे शान्ति त्याग के मूर्तिमान, शिव पथ-पथी गुरुवर। प्रणाम॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो अनर्घ पद प्राप्ताये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

श्री देवशास्त्रगुरु जिन पूजन

वीतराग अरिहत देव के पावन चरणो मे वन्दन।
द्वादशाग श्रुत श्री जिनवाणी जग कल्याणी का अर्चन॥
द्रव्य भाव सयममय मुनिवर श्री गुरु को मैं करूँ नमन।
देव शास्त्र गुरु के चरणो का बारम्बार करूँ पूजन॥

ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु समूह अत्र अवतर अवतर सवौषट, ॐ ह्री श्री देव शास्त्र गुरु समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ , ॐ ह्री श्री देव शास्त्र गुरु समूह अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट्।

आवरण ज्ञान पर मेरे है, हूँ जन्म मरण से सदा दु:खी।
जब तक मिथ्यात्व हृदय मे है यह चेतन होगा नही सुखी॥
ज्ञानावरणी के नाश हेतु चरणो मे जल करता अर्पण।
देव शास्त्र गुरु के चरणो का बारम्बार करूँ पूजन॥१॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो ज्ञानावरणकर्मविनाशनाय जल नि ।
दर्शन पर जब तक छाया है ससार ताप तब तक ही है।
जब तक तन्वो का ज्ञान नही मिथ्यात्व पाप तबतक ही है॥
सम्यक् श्रद्धा के चन्दन से मिट जायेगा दर्शनावरण॥ देव ॥२॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो दर्शनावरणकर्म विनाशनाय चन्दन नि ।

निज स्वभाव चैतन्य प्राप्ति हित जागे उरमे अन्तरबल।
अव्याबाधित सुख का घाता वेदनीय है कर्म प्रबल॥
अक्षत चरण चढाकर प्रभुवर वेदनीय का करुँ दमन ॥ देव ॥३॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो वेदनीयकर्म विनाशनाय अक्षत नि ।
मोहनीय के कारण यह चेतन अनादि से भटक रहा।
निज स्वभाव तज पर द्रव्यो की ममता मे ही अटक रहा।
भेदभाव की खड्ग उठाकर मोहनीय का करूँ हनन।देव ॥४॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्रगुरुभ्यो मोहनीय कर्म विनाशनाय पुष्प नि ।
आयु कर्म के बंध उदय में सदा उलझता आया हूँ।
चारों गतियों में डोला हूँ निज को जान न पाया हूँ ॥
अजरअमर अविनाशी पद हित आयुकर्म का करूँशमन ।देव ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो आयुकर्म विनाशनाय नैवेद्य नि ।
नाम कर्म के कारण मैंने जैसा भी शरीर पाया ।
उस शरीर को अपना समझा निज चेतन को विसराया।
ज्ञानदीप के चिर प्रकाश से नामकर्म का करूँ दमन ।देव ॥५॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरुभ्यो नामकर्म विनाशनाय दीप नि ।
उच्च नीच कुल मिला बहुत पर निजकुल जान नही पाया।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य निरजन सिद्ध स्वरुप न उर भाया॥
गोत्र कर्म का धूम्र उडाऊ निज परिणति मे करूँनमन ।देव ॥७॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो गोत्र कर्म विनाशनाय धूप नि ।
दान लाभ भोगोपभोग बल मिलने मे जो बाधक है।
अन्तराय के सर्वनाश का आत्मज्ञान ही साधक है।
दर्शन ज्ञान अनन्त वीर्य सुख पाऊँ निज आराधक बन।देव ॥८॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो अन्तराय कर्म विनाशनाय फल नि ।
कर्मोदय में मोह रोष से करता है शुभ अशुभ विभाव॥
पर मे इष्ट अनिष्ट कल्पना राग द्वेष विकारी भाव।

भाव कर्म करता जाता है जीव भूल निज आत्मस्वभाव।
द्रव्य कर्म बंधते हैं तत्क्षण शाश्वत सुख का करें अभाव।
चार घातिया चउ अघातिया अष्ट कर्म का करूँ हनन॥ देव.॥१॥
ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरुभ्यो सम्पूर्ण अष्टकर्म विनाशनाय अर्घ्यं नि.

जयमाला

हे जगबन्धु जिनेश्वर तुमको अब तक कभी नहीं ध्याया।
श्री जिनवाणी बहुत सुनी पर कभी नहीं श्रद्धा लाया॥१॥
परम वीतरागी सन्तो का भी उपदेश न मन भाया।
नरक तिर्यंच देव नरगति मे भ्रमण किया बहु दुख पाया॥२॥
पाप पुण्य मे लीन हुआ निज शुद्ध भाव को बिसराया।
इसीलिये प्रभुवर अनादि से भव अटवी मे भरमाया॥३॥
आज तुम्हारे दर्शन कर प्रभु मैंने निज दर्शन पाया।
परम शुद्ध चैतन्य ज्ञानघन का बहुमान हृदय आया॥४॥
दो आशीष मुझे हे जिनवर जिनवाणी गुरुदेव महान।
मोह महातम शीघ्र नष्ट हो जाये करूँ आत्म कल्याण॥५॥
स्वपर विवेक जगे अन्तर मे दो सम्यक् श्रद्धा का दान।
क्षायक हो उपशम हो हे प्रभु क्षयोपशम सद्दर्शन ज्ञान॥६॥
सात तत्व पर श्रद्धा करके देव शास्त्र गुरु को मानूँ।
निज-पर भेद जानकर केवल निज में ही प्रतीत ठानूँ॥७॥
पर द्रव्यो से मैं ममत्व तज आत्म द्रव्य को पहचानूँ।
आत्म द्रव्य को इस शरीर से पृथक भिन्न निर्मल जानूँ॥८॥
समकित रवि की किरणें मेरे उर अन्तर में करें प्रकाश।
सम्यकज्ञान प्रभाकर स्वामी पर भावो का करूँ विनाश॥९॥
सम्यकचारित्र को धारण कर निज स्वरुप का करुँ विकास।
रत्नत्रय के अवलम्बन से मिले मुक्ति निर्वाण निवास॥१०॥

जय जय जय अरहन्त देव जय, जिनवाणी जग कल्याणी।
जय निर्ग्रन्थ महान सुगुरु जय जय शाश्वत शिवशुखदानी ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा॥

देव शास्त्र गुरु के वचन भाव सहित उरधार ।
मन वच तन जो पूजते वे होते भव पार॥

इत्याशीर्वाद

जाप्य मत्र-ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरुभ्यो नम.

समुच्चय पूजन

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरु नमन करि, बीस तीर्थङ्कर ध्याय ।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! विद्यमानविंशतितीर्थङ्करसमूह! अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठी समूह! अत्रावतरावतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! विद्यमानविंशतितीर्थङ्करसमूह! अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठीसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ.।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! विद्यमानविंशतितीर्थङ्करसमूह! अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठीसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्।

अनादिकाल से जग में स्वामिन्, जल से शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहि पहिचाना॥
अब निर्मल रत्नत्रय-जल ले, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊं।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊं।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य:, विद्यमानविंशति तीर्थङ्करेभ्य: अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च: जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

भव-आताप मिटावन की निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने में अब तक मैंने पर में की झूंठी ममता है॥

चन्दन सम शीतलता पाने, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊ॥

ॐ ह्री श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य , विद्यमानविशतितीर्थङ्करेभ्य अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च ससारतापविनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा ।

अक्षयपद के बिना फिरा, जगत की लख चौरासी योनी मे।
अष्टकर्म के नाश करन को अक्षत तुम ढिग लाया मैं॥
अक्षयनिधि निज की पाने अब, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊ॥

ॐ ह्री श्री देव-शास्त्र-गुरूभ्य , विद्यमानविशतितीर्थङ्करेभ्य , अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च अक्षयपदप्राप्तये अक्षत निर्वपामीति स्वाहा॥

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ बाणो से बिन्ध करके, चहुगति दु ख उपजाया है॥
स्थिरता निज मे पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊ॥

ॐ ह्री श्री दव-शास्त्र-गुरुभ्य , विद्यमानविशतितीर्थङ्करेभ्य , अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च काम-वाणविध्वशनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।

पट्रस-मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शान्त हुई ।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय-मन इच्छा शमन हुई ॥
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊ ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊ ॥

ॐ ह्री श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य., विद्यमानविशतितीर्थङ्करेभ्य अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा ।

जड-दीप विनश्वर को अब तक, समझा था मैने उजियारा।
निज-गुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अधियारा॥
यह दीप समर्पित करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊ॥

ॐ ह्री श्री देव-शास्त्र गुरूभ्य विद्यमानविशतितीर्थङ्करेभ्य , अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च मोहान्धकारविनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा॥

यह धूप अनल मे खेने से, कर्मो को नहीं जलायेगी।
निज मे निज की शक्ति ज्वाला, जों राग द्वेप नशायेगी॥
उस शक्ति-दहन प्रगटाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊं॥

ॐ ही श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य., विद्यमानविशतितीर्थङ्करेभ्य· अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च. अष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बदाम श्री फल लवग, चरणन तुम ढिग मैं ले आया।
आतमरस भीने निज गुण फल, मम मन अब उनमे ललचाया॥
अब मोक्ष-महाफल पाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊ॥

ॐ ह्रीं श्री देव शास्त्र-गुरुभ्य , विद्यमानविशतितीर्थङ्करेभ्य. अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च मोक्ष-फलप्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम वसुधा पाने को, कर मे ये आठो द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज मे निज गुण प्रकट किये॥
यह अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊ॥

ॐ ह्रीं श्री दव-शास्त्र-गुरुभ्य , विद्यमानविशतितीर्थङ्करेभ्य अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान।
अब वरणूं जयमालिका, करूँ स्तवन गुणगान॥

नसे घातिया कर्म जु अर्हन्त देवा,
करे सुर-असुर-नर-मुनि नित्य सेवा।
दरश-ज्ञान-सुख-बल अनन्त के स्वामी,
छियालीस गुण युत महा ईश नामी॥१॥

तेरी दिव्य-वाणी सदा भव्य मानी,
महा-मोह विध्वंसिनी मोक्ष-दानी।
अनेकान्तमय द्वादशागी बखानी,
नमो लोक माता श्री जैनवाणी ॥२॥

विरागी अचारज उज्झाय साधू,
दरस-ज्ञान भण्डार समता अराधू।
नगन वेशधारी सु एका विहारी,
निजानन्द मडित मुकतिपथ प्रचारी ॥३॥

विदेहक्षेत्र मे तीर्थङ्कर बीस राजे,
विरहमान बन्दूँ सभी पाप भाजे।
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी,
अनाकुल समाधान सहजाभिरामी ॥४॥

(छन्द)

देव-शास्त्र-गुरु, बीस तीर्थङ्कर, सिद्ध हृदय बिच धर ले र।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले र ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य, विद्यमानविंशतितीर्थङ्करभ्य अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालामहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

दुःख-मुक्ति का उपाय

एवं पणमिय सिद्धे जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे ।
पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं ॥

अर्थ-यदि दुःखों से परिमुक्त होने की इच्छा हो तो पूर्वोक्त प्रकार से (ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन की प्रथम तीन गाथाओं के अनुसार) बारम्बार सिद्धों को, जिनवरवृषभों को तथा श्रमणों को प्रणाम करके श्रामण्य को अंगीकार करो ।

-श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव, प्रवचनसार गाथा २०१

श्री सिद्ध पूजन

स्थापना

चिदानन्द, स्वातमरसी, सत् शिव सुन्दर जान।
ज्ञाता दृष्टा लोकके, परम सिद्ध भगवान॥

ॐ ह्री श्री सिद्धचक्राधिपते। सिद्धपरमेष्ठिन्। अत्र अवतर अवतर सवौषट्। अत्र तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जल

ज्यों–ज्यो प्रभुवर जल पान किया, त्यो–त्यो तृष्णा की आग जली।
थी आस की प्यास बुझेगी अव, पर यह सब मृगतृष्णा निकली।।
आशा तृष्णा से जला हृदय, जल लेकर चरणो मे आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण मे मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन

तन का उपचार किया अव तक, उस पर चन्दन का लेप किया।
मल–मल कर खूव नहा करके, तन के मल का निक्षेप किया॥
अब आतम के उपचार हेतु, तुमको चन्दन सम है पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण मे मैं आया।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धमेष्ठिने ससारतापविनाशनाय चन्दनम् नि ।

अक्षत

सचमुच तुम अक्षत हो प्रभुवर, तुम ही अखण्ड अविनाशी हो।
तुम निराकार अविचल निर्मल, स्वाधीन सफल सन्यासी हो॥
ले शालिकणो का अवलम्बन, अक्षयपद! तुमको अपनाया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण मे मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद प्रासये अक्षतम् नि ।

पुष्प

जो शत्रु जगत का प्रबल काम, तुमने प्रभुवर उसको जीता।
हो हार जगत के बैरी की, क्यो नहि आनन्द बढे सब का॥
प्रमुदित मन विकसित सुमन नाथ, मनसिज को ठुकराने आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण मे मै आया॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वसनाय पुष्पम् नि

नैवेद्य

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता हैं।
भोजन बिन नरको मे जीवन, भर पेट मनुज क्यो मरता हैं॥
तुम भोजन बिन अक्षय सुख मय, यह समझ त्यागने हूँ आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण मे मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नेवेद्यम् नि ।

दीप

आलोक ज्ञान का कारण हैं, इन्द्रिय से ज्ञान उपजता हे।
यह मान रहा था, पर क्यो कर, जड चेतन सर्जन करता हे॥
मेरा स्वभाव है ज्ञानमयी, यह भेदज्ञान पा हरपाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण मे मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहाधकारविनाशनाय दीपम् नि ।

धूप

मेरा स्वभाव चेतनमय है, इसमे, जड की कुछ गध नहीं।
मैं हूँ अखण्ड चिद्पिण्ड चण्ड, पर से कुछ भी सम्बन्ध नही॥
यह धूप नही, जड़-कर्मो की रज आज उडाने मैं आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण मे मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्ठकर्मदहनाय धूपम् नि ।

फल

शुभ कर्मों का फल विषय-भोग, भोगों में मानस रमा रहा।
नित नई लालसायें जागीं, तन्मय हो उनमें समा रहा॥
रागादि विभाव किए जितने, आकुलता उनका फल पाया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण मे मैं आया॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलम् नि ।

अर्घ

जल पिया और चन्दन चरचा, मालाये सुरभित सुमनों की ।
पहनी, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियॉ की रत्नों की॥
सुरभी धूपायन की फैली, शुभ-कर्मो का सब फल पाया।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नही पाया॥
जव दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझ को स्वभाव का भान हुआ।
सुख-नहीं विपय-भोगो में हैं, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ॥
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूं आया।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण मे मैं आया॥

ॐ ह्रीं सिद्ध चक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घपदप्रातये अर्घम् नि ।

जयमाला

दोहा

आलोकित हो लोक मे, प्रभु परमात्मप्रकाश।
आनन्दामृत पान कर, मिटे सभी की प्यास॥

पद्धरी छन्द

जय ज्ञानमात्र ज्ञायक स्वरूप, तुम हो अनन्त चैतन्य रूप।
तुम हो अखण्ड आनन्द पिण्ड, मोहारि दलन को तुम प्रचण्ड॥
रागादि विकारी भाव जार, तुम हुए निरामय निर्विकार।
निर्द्वन्द निराकुल निराधार, निर्मम निर्मल हो निराकार॥
नित करत रहत आनन्द रास, स्वाभाविक परिणति में विलास।
प्रभु शिव-रमणी के हृदय हार, नित करत रहत निज में विहार॥

प्रभु भवदधि यह गहरो अपार, बहते जाते सब निराधार।
निज परिणति का सत्यार्थभान, शिव पद दाता जो तत्वज्ञान॥
पाया नहि मैं उसको पिछान, उल्टा ही मैने लिया मान ।
चेतन को जडमय लिया जान, तन मे अपनापा लिया मान॥
शुभ-अशुभ राग जो दु खखान, उसमे माना आनन्द महान।
प्रभु अशुभ कर्म को मान हेय, माना पर शुभ को उपादेय॥
जो धर्म-ध्यान आनन्द रूप, उसको माना मैं दु ख स्वरूप।
मनवाछित चाहे नित्य भोग, उनको ही माना है मनोग॥
इच्छ निरोध की नहि चाह, कैसे मिटता भव-विपय-दाह।
आकुलतामय ससार सुख, जो निश्चय से है महा दु ख॥
उसकी ही निश दिन करी आश, कैसे कटता ससार पास।
भव दु ख का पर को हेतु जान, पर से ही सुख को लिया मान॥
मैं दान दिया अभिमान टान, उसके फल पर नहि दिया ध्यान।
पूजा कीनी वरदान माग, कैसे मिटता ससार स्वाग॥
तेरा स्वरूप लख प्रभु आज, हो गये सफल सम्पूर्ण काज।
मो उर प्रगट्यो प्रभु भेदज्ञान, मैंने तुम को लीना पिछान॥
तुम परके कर्त्ता नहीं नाथ ज्ञाता हो सबके एक साथ।
तुम भक्तो को कुछ नही देत, अपने समान बस बना लेत॥
यह मैंने तेरी सुनी आन, जो लेवे तुमको बस पिछान।
वह पाता है केवल्यज्ञान, होता परिपूर्ण कला-निधान॥
विपदामय परपद है निकाम, निज पद ही है आनन्द धाम।
मेर मन मे बस यही चाह, निज पद को पाऊँ हे जिनाह॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जयमालार्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

पर का कुछ नहि चाहता, चाहू अपना भाव।
निज स्वभाव मे थिर रहू, मेटो सकल विभाव॥

(पुष्पाजलि क्षिपेत्)

श्री सिद्ध पूजन

हे सिद्ध तुम्हारे वन्दन से उर में निर्मलता आती है।
भव भव के पातक कटते है पुण्यावलि शीश झुकाती है॥
तुम गुण चिन्तन से सहज देव होता स्वभाव का भान मुझे।
है सिद्ध समान स्वपद मेरा हो जाता निर्मल ज्ञान मुझे॥
इसलिए नाथ पूजन करता, कब तुम समान मै बन जाऊँ।
जिस पथ पर चल तुम सिद्ध हुए, मे भी चल सिद्ध स्वपदपाऊँ॥
ज्ञानावरणादिक अप्टकर्म को नप्ट करूँ ऐसा वल दो।
निज अप्ट स्वगुण प्रगटे मुझमे, सम्यक् पूजन का यह फल हो॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेप्ठिन् अत्र अवतर अवतर सवांपट, ॐ ह्री णमो सिद्धाण सिद्ध परमेप्ठिन् अत्र तिप्ठ ठ. ठ., ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परिमेप्ठिन् अत्र मम् सन्निहतो भव भव वपट्।

कर्म मलिन हू जन्म जरा मृतु को कैसे कर पाऊँ क्षय।
निर्मल आत्म ज्ञान जल दो प्रभु जन्म मृत्यु पर पाऊँजय॥
अजर, अमर, अविकल, अविकारी, अविनाशी अनत गुणधाम।
नित्य निरजन भव दुख भजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम॥१॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेप्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि ।

शीतल चन्दन ताप मिटाता, किन्तु नहीं मिटता भव ताप।
निजस्वभाव का चन्दन दो प्रभु मिटे राग का सव सताप॥ अजर.॥२॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्ध परमेप्ठिने ससारताप विनाशनाय चन्दन नि ।

ठलझा हू ससार चक्र मे कैसे इससे हो उद्धार।
अक्षय तन्दुल रत्नत्रय दो हो जाऊँभव सागर पार॥अजर॥३॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्धपरमेप्ठिने अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

काम व्यथा से मैं घायल हूं कैसे करु काम मद नाश।
विमलदृष्टि दो ज्ञानपुष्प दो कामभाव हो पूर्ण विनाश॥अजर॥४॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्धपरमेप्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्प नि ।

क्षुधा रोग के कारण मेरा तृप्त नहीं हो पाया मन।
शुद्ध भाव नैवेद्य मुझे दो सफल करूँप्रभु यह जीवन ॥अजर॥५॥
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ।

मोह रूप मिथ्यात्व महातम अन्तर मे छाया घनघोर।
ज्ञानदीप प्रज्वलित करो प्रभुप्रकटे समकितरवि का भोर ॥अजर॥६॥
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

कर्म शत्रु निज सुख के घाता इनको कैसे नष्ट करूँ।
शुद्ध धूप दो ध्यान अग्नि मे इन्हे जला भवकष्ट हरूँ ॥अजर ॥७॥
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्म विध्वशनाय धूप नि ।

निज चैतन्य स्वरूप न जाना कैसे निज मे आऊँगा।
भेद ज्ञान फल दो हे स्वामी स्वयं मोक्षफल पाऊँगा ॥अजर॥८॥
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्धपरमेष्ठिने महामोक्षफल प्राताये फल नि ।

अष्ट द्रव्य का अर्घ चढाऊँ अष्टकर्म का हो सहार।
निज अनर्घ पद पाऊँभगवन् सादि अनंत परमसुखकार ॥अजर॥९॥
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाण सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घपद प्राप्तये अर्ध्यं नि ।

जयमाला

मुक्तिकन्त भगवन्त सिद्ध को मनवच काया सहित प्रणाम।
अर्ध चन्द्र सम सिद्ध शिला पर आप विराजे आठो याम ॥१॥

ज्ञानावरण दर्शनावरणी, मोहनीय अन्तराय मिटा।
चार घातिया नष्ट हुए तो फिर अरहन्त रूप प्रगटा ॥२॥

वेदनीय अरु आयु नाम अरु गोत्र कर्म का नाश किया।
चऊ अघातिया नाश किये तो स्वयं स्वरूप प्रकाश किया ॥३॥

अष्टकर्म पर विजय प्राप्त कर अष्ट स्वगुण तुमने पाये।
जन्म मृत्यु का नाश किया निज सिद्ध स्वरूप स्वगुण भाये ॥४॥

निज स्वभाव में लीन विमल चैतन्य स्वरुप अरुपी हो।
पूर्ण ज्ञान हो पूर्ण सुखी हो पूर्ण बली चिद्रूपी हो ॥५॥

वीतराग हो सर्व हितैषी राग द्वेष का नाम नहीं।
चिदानन्द चैतन्य स्वभावी कृतकृत्य कुछ काम नहीं ॥६॥

स्वयं सिद्ध हो स्वयं बुद्ध हो स्वयं श्रेष्ठ समकित आगार।
गुण अनन्त दर्शन के स्वामी तुम अनंत गुण के भंडार॥७॥

तुम अनन्त बल के हो धारी ज्ञान अनन्तानन्त अपार।
बाधा रहित सूक्ष्म हो भगवन् अगुरुलघु अवगाह उदार॥८॥

सिद्ध स्वगुण के वर्णन तक की मुझ मे प्रभुवर शक्ति नहीं।
चलू तुम्हारे पथ पर स्वामी ऐसी भी तो भक्ति नही॥९॥

देव तुम्हारी पूजन करके हृदय कमल मुस्काया है।
भक्ति भाव उर में जागा है मेरा मन हर्षाया है॥१०॥

तुम गुण का चिन्तवन करे जो स्वयं सिद्ध बन जाता है।
हो निजात्म में लीन दुखों से छुटकारा पा जाता है॥११॥

अविनश्वर अविकारी सुखमय सिद्ध स्वरूप विमल मेरा।
मुझमे हैं, मुझसे ही प्रगटेगा स्वरूप अविकल मेरा॥१२॥

ॐ ह्री णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठिने पूर्णार्ध्य नि स्वाहा।

शुद्ध स्वभावी आत्मा निश्चय सिद्ध स्वरूप।
गुण अनन्तयुत ज्ञानमय है त्रिकाल शिवभूप॥

इत्याशीर्वाद:

जाप्य मत्र -ॐ ह्रीं श्री अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठिभ्यो नम.

यदि तुम्हें किसी बात की कामना करनी ही है तो पुनर्जनम के चक्र से छुटकारा पाने की कामना करो और वह छुटकारा तभी मिलेगा, जब तुम कामनाओं को जीतने की इच्छा करोगे ।

श्री पञ्च परमेष्ठी पूजन

अर्हन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन।
जय पञ्च परम परमेष्ठी जय, भव सागर तारण हार नमन॥
मन-वच काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय में आह्वानन।
मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन॥
निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन।
तुम चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्ध रूप का हो दर्शन॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हत-सिद्ध-आचार्य उपाध्याय-सर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री अर्हत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री अर्हत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

मैं तो अनादि से रोगी हूँ उपचार कराने आया हूँ।
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ॥
मैं जन्म-जरा-मृत्यु नाश करूँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलम् नि स्वाहा।

संसार ताप में जल-जल कर, मैंने अगणित दुःख पाये हैं।
निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाए हैं॥
शीतल चदन है भेंट तुम्हें, संसार ताप नाशो स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय, चन्दनम् नि स्वाहा।

दुःखमय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही।
शुभ-अशुभ भाव की भंवरों में, चैतन्य शक्ति निज अटक रही॥

तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी।
ॐ ह्रीं श्रीपञ्चपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

मैं काम व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किञ्चित् छाया।
चरणो में पुष्प चढाता हूँ, तुम को पाकर मन हर्षाया॥
मैं काम भाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वसनाय पुष्पम् नि स्वाहा।

मै क्षुधा रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति मे भर माया हूँ।
जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ॥
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा रोग मेटो स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नेवेद्यम् नि स्वाहा।

मोहान्ध महा अज्ञानी मै, निज को पर का कर्त्ता माना।
मिथ्यातम के कारण मैने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना॥
मै दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् नि स्वाहा।

कर्मों की ज्वाला धधक रही , संसार बढ रहा है प्रतिपल।
संवर से आस्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल-पल॥
मैं धूप चढाकर अब आठो, कर्मोका हनन करूँ स्वामी।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु:ख मेटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा

निज आत्मतत्त्व का मनन करूँ चितवन करूँ निज चेतन का।
दो श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का॥

उत्तम फल चरण चढाता हूँ, निर्वाण महा फल हो स्वामी ।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दु.ख मेटो अन्तर्यामी ।।

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा ।

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ ।
अब तक के सचित कर्मो का, मै पुञ्ज जलाने आया हूँ ॥
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी ।
हे पञ्च परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पञ्चपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार ।
अष्टादश दोप रहित जिनवर, अर्हन्त देव को नमस्कार ॥१॥
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार ।
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत, भगवत सिद्ध को नमस्कार ॥२॥
छत्तीस सुगुण से तुम मण्डित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार ।
हे मुक्ति वधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार ॥३॥
एकादश अङ्ग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार ।
बाह्यान्तर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कार ॥४॥
व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म, वैराग्य भावना हृदय धार ।
हे द्रव्य-भाव संयममय मुनिवर, सर्व साधु को नमस्कार ॥५॥
बहु पुण्य संयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेवचरण दर्शन ।
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन ॥६॥
निज-पर का भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूँ ।
अब भेदज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ ॥७॥
निज मे रत्नत्रय धारण कर, निज परिणति को ही पहचानूँ।
पर-परिणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्त्व को ही जानूँ॥८॥

जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान मैं ध्याऊँगा।
तब चार घातिया क्षय करके, अर्हन्त महापद पाऊँगा ॥९ ॥
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु कब इसको पाऊँगा।
सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निजस्वभाव मे आऊँगा ॥१० ॥
अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु मैंने की है पूजन।
तबतक चरणों में ध्यान रहे, जबतक न प्राप्त हो मुक्ति सदन ॥११ ॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय सर्वसाधूपञ्चपरमेष्ठिभ्यो महार्ध्यम्

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मगल गान करूँ।
मंगल मे प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मन्त्र का ध्यान करूँ ॥१२ ॥

(इति पुष्पाञ्जलि क्षिपेत्)

श्री णमोकार मंत्र पूजन

राजमल पवैया

ॐ णमो अरिहंताणं जप अरिहंतो का ध्यान करूँ।
ॐ णमो सिद्धाणं जप कर सिद्धों का गुणगान करूँ॥
ॐ णमो आयरियाण जप आचार्यो को नमन करूँ।
ॐ णमो उवज्झायाणं जप उपाध्याय को नमन करूँ॥
ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं जप सर्व साधुओ को वन्दन करूँ।
णमोकार का महा मन्त्र जप मिथ्यातम को करूँ वमन॥
एसो पंच णमोयारो जप सर्व पाप अवसान करूँ।
सर्व मंगलो में पहिला मंगल पढ़ मंगल गान करूँ॥
णमोकार का मंत्र जपूँ मैं णमोकार का ध्यान करूँ॥
णमोकार की महाशक्ति से निज आतम कल्याण करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पंच नमस्कार मंत्र अत्र अवतर-अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री पंच नमस्कार मंत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री पंच नमस्कार मंत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

ज्ञानावरणी कर्मनाश हित मिथ्यातम का करूँ अभाव।
जन्म मरण दु:ख क्षय कर डालूँ प्राप्त करूँ निजशुद्ध स्वभाव॥
णमोकार का मंत्र जपूं मैं णमोकार का ध्यान करूँ ।
णमोकार की महाशक्ति से नाथ आत्म कल्याण करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पच नमस्कार मत्राय ज्ञानावरणी कर्म विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन आवरणी क्षय करने चिर अविरति का करूँ अभाव।
यह ससारताप क्षय करने प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव॥ णमो

ॐ ह्रीं श्री पच नमस्कार मत्राय दर्शनावरणी कर्म विनाशनाय चन्दनम् नि ।

वेदनीय की पीडा हरने करलूँ पच प्रमाद अभाव।
अक्षय पद पाने को स्वामी प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव॥ णमो

ॐ ह्रीं श्री पच नमस्कार मत्राय वेदनीय कर्म विनाशनाय अक्षतम् नि ।

मोहनीय का दर्प कुचलदूं करलुं पूर्ण कपाय अभाव।
काम बाण की व्याधि मिटाऊँ प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव॥ णमो

ॐ ह्रीं श्री पच नमस्कार मत्राय मोहनीय कर्म विध्वसनाय पुष्पम् नि. ।

आयु कर्म के सर्वनाश हित शीघ्र करूँ त्रय योग अभाव।
क्षुधा व्याधि का नाश करूँ मैं प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव॥ णमो

ॐ ह्रीं श्री पच नमस्कार मत्राय आयु कर्म विनाशनाय नैवेद्यम् नि ।

नाम कर्म का मूल मिटा दूँ नष्ट करूँ मे सव विभाव।
भ्रम अज्ञान विनाश करूँ मैं प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव॥
णमोकार का मंत्र जपूँ मै णमोकार का ध्यान करूँ।
णमोकार की महाशक्ति से नाथ आत्म कल्याण करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पच नमस्कार मत्राय नामकर्म विनाशना दीपम् नि ।

गोत्र कर्म को दग्ध करूँ मैं कर्म प्रकृति सब करूँ अभाव।
अष्ट कर्म विध्वंस करूँ मैं प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव॥ णमो

ॐ ह्रीं श्री पच नमस्कार मत्राय गोत्र कर्मनाशनाय धूपम् नि ।

अंतराय मूलोच्छेद कर सर्व बंध का करूँ अभाव।
परम मोक्ष फल पाऊँ स्वामी प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव॥ णमो
ॐ ह्रीं पच नमस्कार मंत्राय अंतराय कर्म विनाशनाय फलम् नि.।

परम भेद विज्ञान प्राप्त कर, करलूं मैं संसार अभाव।
पद अनर्घ पाने को स्वामी प्राप्त करूँ निज शुद्ध स्वभाव॥ णमो
ॐ ह्रीं श्री पच नमस्कार मंत्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यम् नि ।

जयमाला

णमोकार जिन मत्र का जाप करूँ दिन रात
पाप पुण्य को नाश कर पाऊँ मोक्ष प्रभात॥
छयालीस गुण धारी स्वामी नमस्कार अरिहतों को।
अष्ट स्वगुण धारी अनंत गुण मंडित बन्दू सिद्धो को॥
हैं पच्चीस गुणों से भूषित नमस्कार आचार्यों को ।
हैं छत्तीस गुणो से शोभित नमस्कार उपाध्यायो को॥
अट्ठाईस मूल गुणधारी नमस्कार सब मुनियो को।
ॐ शब्द मे गर्भित पॉचो परमेष्ठी प्रभु गुणियो को॥
सर्व मङ्गलो में सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ठ मङ्गलदाता।
ह्रीं शब्द में गर्भित चौबीसों तीर्थङ्कर विख्याता॥
णमोकार पैंतीस अक्षर का मंत्र पवित्र ध्यान कर लूँ।
यह नवकार मंत्र अडसठ अक्षर से युक्त ज्ञान कर लूँ॥
"अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुनमः" भज लूँ।
सोलह अक्षर का यह पावन मंत्र जपू दुष्कृत तज लूँ॥
छह अक्षर का मंत्र जपूँ "अरहंत सिद्ध" को नमन करूँ।
"असिआउसा" पंचाक्षर का मंत्र जपूं अघ शमन करूँ ॥
अक्षर चार मंत्र जप लूँ "अरहंत" देव का ध्यान करूँ।
"अर्हम" अक्षर तीन, मंत्र जप स्वपर भेद विज्ञान करूँ॥

दो अक्षर का "सिद्ध" मंत्र जप सर्व सिद्धयाँ प्रगट करूँ।
अक्षर एक "ॐ" ही जपकर सब पापों को विघट करूँ॥
सप्ताक्षर का मंत्र "णमो अरहंताणं" का मैं जाप करूँ।
पांच अक्षर का मत्र "णमो सिद्धाणं" जप भव ताप हरूँ॥
सप्ताक्षर का मत्र "णमो आइरियाण" जप हर्षाऊँ।
सप्ताक्षर का 'णमो उवज्झयाण जपकर मुस्काऊँ ॥
नौ अक्षर का मंत्र "णमो लोए सव्वसाहूणं" ध्याऊँ।
"ऐसो पंच णमोयारो" जप सर्व पाप हर सुख पाऊँ॥
नव पद या नवकार पाँच पद का मैं णमोकार ध्याऊँ।
एक शतक सत्ताईस अक्षर का चत्तारि पाठ गाऊँ॥
"चत्तारि मङ्गलम्" श्रेष्ठ मङ्गल है जग मे परम प्रधान।
"अरिहता मङ्गलम्" पाठ कर गाऊँ निज आतम केगान॥
"सिद्धामङ्गलम्" "साहू मङ्गलम्" का भाव हृदय भर लूँ।
"केवलि पण्णतो धम्मो मङ्गलम्" स्वधर्म प्राप्त करलूँ॥
"चत्तारि लोगोत्तमा" ही सर्वोत्तम है परम शरण।
"अरिहंत लोगोत्तमा" ही से होगा भव कष्ट हरण॥
"सिद्धा लोगोत्तमा" सु "साहू लोगोत्तमा" परम पावन।
"केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगोत्तमो" मोक्ष साधन॥
"चत्तारि शरण पव्वज्जामि" का गूँजे जय जय गान।
"अरिहंतेशरणं पव्वज्जामि" का हो प्रभु लक्ष्य महान॥
"सिद्धेशरणं पव्वज्जामि" मोक्ष सिद्धि को मैं पाऊं।
"साहूशरणं पव्वज्जामि" शुद्ध भावना ही भाऊँ॥
"केवलि पण्णतो धम्मो शरणं पव्वज्जामि" है ध्येय।
महा मोक्ष मङ्गल शिवदाता पांचों परमेष्ठी प्रभु श्रेय॥
महा मंत्र निः कांक्षित होकर शुद्ध भाव से नित ध्याऊँ।
पंच परम परमेष्ठी का सम्यक स्वरूप उर में लाऊँ ॥

णमोकार का मंत्र जपूँ मैं णमोकार का ध्यान करूँ ।
महा मंत्र की महाशक्तियां पा नाथ आत्म कल्याण करूँ ॥
अर्हँ अर्हं अर्हं जपकर निज शुद्धात्म कर लूँ भान ।
नमः सर्व सिद्धेभ्यः कहकर मोक्ष मार्ग पर करूँ प्रयाण ॥
ॐ ह्रीं पंच नमस्कार मंत्राय पूर्णार्ध्यम ।
णमोकार के मंत्र की महिमा अगम अपार ।
भाव सहित जो ध्यावते हो जाते भवपार ।

इत्याशीर्वाद :

प्य मंत्र- ॐ ह्रीं श्री णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाण, णमो
आइरयाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ।

समुच्चय चौबीसी पूजा

द्यानतरायजी

वृषभ अजितसंभवअभिनन्दन, सुमतिपदमसुपासजिनराय ।
चंद पुहुप शीतल श्रेयांस नमि, वासुपूज्य पूजित सुरराय ।।
विमल अनंत धर्म जस-उज्जवल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्वप्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरातचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर सवौषट् आह्वाननम् ।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरातचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरातचतुर्विंशतिजिन समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

मुनि-मन-सम उज्जवल नीर, प्रासुक गंध भरा ।
भरि कनक-कटोरी धीर दीनी धार धरा ॥
चौबीसों श्रीजिनचन्द, आनन्द-कन्द सही ।
पद जजत हरत भव फन्द, पावत मोक्ष-मही ।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंग भरी ।
जिन-चरनन देत चढाय, भव-आताप हरी ॥ चौवीसों ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

तन्दुल सित सोम-समान, सुन्दर अनियारे ।
मुक्ता फलकी उनमान, पुञ्ज धरों प्यारे ॥ चौवीसों ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

वर-कुञ्ज कदंब कुरंड सुमन सुगन्ध भरे ।
जिन अग्र धरों गुन-मंड, काम-कलंक हरे ॥ चौवीसों ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

मन-मोहन-मोदक आदि सुन्दर सद्य बने ।
रस-पूरित प्रासुक स्वाद जजत क्षुधादि हने ॥ चौवीसों ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगे ।
सब तिमिर मोह क्षय जाय ज्ञान-कला जागे ॥ चौवीसों ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

दश गन्ध हुतासन-माँहि, हे प्रभु खेवत हों ।
मिस-धूम करम जरि जाहिं, तुम पद सेवत हों ॥ चौवीसों ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो ।
देखत दृग-मनको प्यार, पूजत सुख पायो ॥ चौवीसों ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो मोक्षपदप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

जल-फल आठों शुचि-सार ताको अर्घ करों ।
तुमको अरपों भवतारि, भवतर मोच्छवरों ॥ चौवीसों ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

जयमाला

श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाय हित हेत ।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत ॥ १ ॥
जय भवतमभञ्जन, जनमनकञ्जन, रञ्जन दिनमनि स्वच्छ करा ।
शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौबीसो जिनराज वरा ॥

पद्धरी छन्द

जय ऋषभदेव ऋषिगण नमन्त, जय अजित जीत वसुअरि तुरंत ।
जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द-पूर ॥ १ ॥
जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्मपद्मदुतितन-रसाल ।
जय जय सुपास भवपाशनाश, जय चंद चद तन दुति प्रकाश ॥ २ ॥
जय पुष्पदन्त दुतिदन्त-सेत, जय शीतल शीतल गुणनिकेत ।
जय श्रेयनाथ नुत-सहसभुज्ज, जय वासव-पूजित वासुपूज्य ॥ ३ ॥
जय विमल विमलपद-देनहार, जय जय अनन्त गुणगण अपार ।
जय धर्म-धर्म शिव-शर्म देत, जय शान्ति शान्ति पुष्टी करेत ॥ ४ ॥
जय कुन्थु कुन्थु आदिक रखेय, जय अर जिन वसु अरि-क्षय करेय ।
जय मल्लि मल्ल हतमोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्ल-दल्ल ॥ ५ ॥
जय नमि नित वासवनुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष चक्र नेम ।
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्द्धमान शिवनगर साथ ॥ ६ ॥
चौवीस जिनन्दा आनन्द-कन्दा, पाप-निकन्दा सुखकारी ।
तिनपद-जुग-चन्दा उदय अमन्दा, वासव-वन्दा हितकारी ॥
ॐ ह्रीं श्री वृषभादिचतुर्विंशति जिनेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
भुक्ति-मुक्ति-दातार, चौवीसो जिनराज वर ।
तिन पद मन वच धार, जो पूजैं सो शिव लहैं ॥

(इत्याशीर्वादः पुष्पाजलि क्षिपेत्)

आदिनाथ जिन पूजा

(प्रकाश जैन साहित्यरत्न, प्रभाकर)

जय अरूण किरण से ज्योर्तिमय, तमहर, अघक्षायक, गुण आगर।
जय युग निर्माता, दुखत्राता, जयतीर्थ-प्रवर्तक जय नागर।
जय कर्म मार्ग के सचालक, जय आदि विधाता, आदि देव।
श्रद्धा से शीश झुका मेरा, जय परमेश्वर। करूणा सागर।
साधना हीन, साधन विहीन, है प्रभु। यह अभिनन्दन तेरा।
मेरे अन्तर मे पेठ नाथ। स्वीकार करो वन्दन मेरा।
आह्वाननम् स्थापनम् सन्निधिकरणम्

ससार भरा कलिकल्मप से, फिर मै ही कैसे बच पाता?
जिनसे आवश्यक हो हटना, उनसे जुडता दृढतर नाता।
पथ विमुख भटकता लहरो मे, है कूल कहॉ यह कब जाना?
भव जलधि तरूँ इससे प्रभुवर। जल धारा देकर सुख माना।
जलम्

सूरज की किरणो से यद्यपि जाते हे सूख नदी नाले।
पर भर जाते हैं वे फिर, जब घनघोर वरसते घन काले।
मे तो युग-युग से प्यासा हूँ। कब ज्ञान पिपासा बुझ पायी।
प्रभु। मिले शान्ति शाश्वत मुझको मानूँगा उस दिन निधि आयी।
चन्दनम्

क्षत-विक्षत हे मेरा अन्तर, अज्ञानी झझावातो से।
भर गई कपट की धूल, और जर्जर अघ-आघातो से।
जन्म दुख, जीवन भर दुख, दुखमय जरा, मृत्यु दुख से होती।
अक्षय पद की अभिलाषा से, अर्पित करता अक्षत-मोती।
अक्षतम्

पंचेन्द्रिय की अभिलाषाएँ, मन कहता, नित्य करो पूरी।
अनुचर-सा मैं दौड़ा फिरता, पर बढ़ती ही जाती दूरी।
यह पुष्प बताता, रंग-रूप-सौन्दर्य-कान्ति अस्थाई है।
वासना नष्ट हो, इसीलिये, पुष्पांजलि, नाथ! चढ़ाई है।
. . . . पुष्पम्

षटरस-व्यंजन, पकवानों से, मैं तन की क्षुधा बुझा लेता।
वस्त्राभूषण से सज्जित कर, पीतल को स्वर्ण बना देता।
पर, चेतन भूखा रह जाता, कर्मों की भीषण कारा में।
सम्बल दो, नाथ! सहारा दो, जो पार जा सकूं धारा में।
. . नैवेद्यम्

धरती पर माटी के दीपक, नभ में सूरज, चन्दा, तारे।
अज्ञान अँधेरा हरने को, हैं ये सब बेबस बेचारे।
अक्षय, अनन्त है ज्ञान ज्योति, जिस पर स्वामित्व तुम्हारा है।
वह ज्योति मिले, इससे श्रद्धा का सुन्दर दीप जलाया है।
. . दीपम्

संयोग सदैव मिले ऐसे, मैं भटक गया, पथ पा न सका।
मिल गए सुगुरु, सत्पथ मिला, पर उनमें चित्त लगा न सका।
आठों कर्मों का क्रम ऐसा, आश्रव से मैं कब बच पाता?
चरणों में धूप चढ़ा, चाहूँ, टूटे मेरा इनसे नाता।
. धूपम्

शुभ कर्म कभी किंचित करता, तो मन कहता फल तुरन्त मिले।
अन्तर में भरे विकार यहाँ, कैसे विवेक की कली खिले।
यह आग राग की बुझे, नाथ! ओ द्वेष-क्लेश सब मिट जाये।
भव-सागर से हट, परम ज्योतिमय, सिद्ध-शिला का तट पाये।
.. फलम्

भव के वैभव मे मन उलझा, औ चेतन अपना पन भूला।
मिथ्या दर्शन-चरित्र-ज्ञान ही मान लक्ष्य फिरता फूला।
जब देव! तुम्हारी वाणी के, अमृत-कण मानस पा जाता।
खुल जाते अन्तर-नयन और लगता है सच्चा सुख आता।
अपनी युग-युग की भूलो का, प्रायश्चित करने आज चला।
है अर्घ समर्पित चरणो मे प्रभु आगे मै जाऊँ न छला।
अर्घम्

पंचकल्याणक

आपाढ असित द्वितीया, धनपति आए साकेत सजाने को।
मॉ मरुदेवी की सेवा मे, देवी थी हर्ष बढाने को।
गर्भोत्सव था, छह मास पूर्व से रत्न वृष्टि होती भारी।
हे आदि देव! तव चरणो की शुभ भक्ति हरे बाधा सारी।
(आपाढ कृष्णा द्वितीया गभ कल्याण प्राप्ताये अर्घ)

चैत्र श्याम नवमी के दिन, ससृति को मधुर बसन्त मिला।
उस भोग भूमि उदयाचल से, यह मुक्तिदूत-सा अरुण खिला।
सुर नर आनन्दित होते थे, प्रभु के दर्शनकर सुखकारी।
हे आदि देव! तव चरणो की शुभ भक्ति हर बाधा सारी।
चैत्र कृष्णा नवमी दिने जन्म कल्याण प्राप्ताये अघ

सचालित करने साधु मार्ग, अवतरण-दिवस, दिग्पट धारा।
सह कठिन परीपह, क्षुधा-तृपा का दानव भी तप से मारा।
जिनकी पुनीत् साधना रश्मि, रवि-किरणो सी थी अविकारी।
हे आदि देव! तव चरणो की शुभ भक्ति हरे बाधा सारी।
चैत्र कृष्णा नवमी दिने तप कल्याण प्राप्ताये अर्घ

फाल्गुन कृष्णा एकादशि तिथि, केवल-रवि धीरे से झॉका।
तो जन-गण-मन अधिनायक का सच्चा स्वरूप सबने ऑका।

बह चली ज्ञान-गंगा पावन, भरते थे भक्त वहाँ झारी।
हे आदि देव। तव चरणों की शुभ भक्ति हरे बाधा सारी।
(फाल्गुन कृष्णा एकादशी दिने ज्ञान कल्याण प्राप्ताये अर्घं)

अलि माघ चतुर्दशि को जिनवर, यह लोक छोड हो अविनाशी।
पा गए परम निर्वाण धाम, हम सब हैं जिसके प्रत्याशी।
अब तक जग पाता ज्योति, नाथ। वह दीप जलाया तम हारी।
हे आदि देव। तव चरणो की शुभ भक्ति हरे बाधा सारी।
(माघ कृष्णा चतुर्दशी दिने मोक्ष कल्याण प्राप्ताये अर्घं)

जयमाला

पग पग पर ठोकर खा गिर गिर डगमग चरणो मे उठ पाया,
फिर भी मन ने कव स्वार्थ तजा इन्द्रिय सुख मे ही भर माया ।
मैंने अपने अनुकूल सदा गढली धर्मो की परिभापा ।
संयोगो मे खुल कर खेला, रोता तव, जव टूटी आशा ॥

निर्वल सत्पथ पर भी देखा तो तुरत वीरता आ जाती,
अन्याय भली करले फिर भी वाणी कुछ कहते सुकुचाती ।
वस क्षमा इसे ही मान नाथ, मैं कव से लगा रहा गोता,
अमृत फल मागा करता हूँ यद्यपि विप वीज सदा बोता ॥

कुल जाति, विभव, तन, सुन्दरता बल वुद्धि श्रेष्ठ सवसे मेरी,
मैं घोर तपस्वी पूज्य महा करता प्रचार देता फेरी ।
सम्मान चाहता अपना ही औरो का कर अपमान बडा,
फिर भी मार्दव का पालक हू इस जिद पर रहता सदा अडा ॥

रस मे विप मिश्रण कर देता हर लेता हूँ सुख औरो का,
कहता हूँ कुछ करता हूँ कुछ, क्या कार्य नहीं यह चोरो का ।
हो स्वार्थ सिद्धि तो कर देता मैं सदा समर्थन पापो का,
देता हूँ दोप अनेको को जब फल मिलता अभिशापो का ॥

जड कर्मो की जड़ता काली रजनी सी जब मन पर छाती
तो सत्य धर्म की कमल कली चेतना रहितसी मुस्काती
पर-निदा मे मन सुख पाता, अपने दोषो को गुण माना,
प्रभु अब तक मेरे अन्तर ने कब शुद्ध सत्यगुण पहिचाना ॥

तन सुन्दरता मे कमी न हो यह सोच सजाता काया को
मृग तृष्णा की इच्छाओ हित मैं छोड ना पाया माया को,
है शुद्ध शौच यदि चेतन से, कर्मो का कर्दम हट जाये
प्रगटे अनन्त आनन्द ज्योति, अर्हन्त अवस्था जब आये ॥

तन की गाडी इन्द्रिय घोडे, मन जिसे चलाने वाला है
लेकिन स्वतत्र से दौडे सब, खाई खन्दक या नाला है
अपने अनन्त बल को भूला आरोही चेतन घबराता ।
सो नाथ असयम युत जीवन, भटकाता लक्ष्य नहीं पाता ॥

इन्द्रिय निग्रह के हेतू नही, व्रत उपवासो की आराधा ।
साधा बस लोक दिखावे को जिससे न हो कीर्ति मे बाधा ॥
बारह प्रकार के बाह्य और आभ्यान्तर तप से दूर रहा ।
युग युग से चक्कर लगा रहा फिर भी भोगो में चूर रहा ॥

अहार, अभय, औपध, आगम का दान महा सुखकारी है
सिद्धान्त रूप मे माना पर हटता जब आती बारी है ।
भौतिक सुख साधन का अर्जन, करता रहता चाहे जैसे ।
फल पाने पर पछताता हूँ आखिर बच भी पाता कैसे ॥

धरती पर जो सुख वैभव है, उनका मै बन जाऊ स्वामी ।
अधिकार छीनता औरो के चाहे कहलाऊ प्रति गामी ॥
सन्तोष नहीं मन पाता है लपटता बढती जाती है ।
प्रभु आकिंचन की महाशक्ति, अन्तर से कब आ पाती है ॥

रस लोभी भौंरे का जीवन, ज्यो कमल कुंज मे खो जाता,
वासना मुग्ध मेरा मन भी अन्तर गुण अर्पित कर आता।
प्रभु सुरबाला सा छल कौशल, लखकर विराग तुमको पाया,
मैं भी पाऊ वह ज्ञान ज्योती, जो छूट जाये काया माया ॥
सब विषय विकारो को तज कर, कुन्दन सा अन्तर दमक उठे,
परमार्थ दीप, सत्यार्थ स्नेह, आलोक, हृदय मे चमक उठे,
मैं भी प्रभु दुद्धर तप धारू, मिट जाये लौकिक आशाये
बन जाऊ सिद्ध शिला वासी यह जन्म मरण सब हट जाये ॥

है देव, अर्चना भावो से उस महापन्थ के पाने को
तेरे चरणो में मस्तक है तेरे ही गुण अपनाने को
तन मन अन्तर तप से मैं नत, प्रभु यह वन्दन स्वीकार करो
पावन चरणो की छाया से मेरे मानस का ताप हरो ॥

हैनाथ मुझे विश्वास यही तेरी इस पावन पूजा से,
तेरा जैसा बन जाऊगा कर सका भक्ति किचित मन से
हट जावेगे भव के बन्धन, टूटेगा नाता जब तन का
पाऊगा वही प्रकाश राशि, जो सत्स्वरूप है चेतन का ॥

(ऊ ह्रीं श्री ऋषभ देवाय जयमाला पूर्णार्घ निर्वपामीति स्वाहा

कब मिलि है......



ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि है ॥टेक॥

आप तिरें अरु पर को तारें, निस्प्रही निर्मल हैं ॥१॥
तिल तुष मात्र सग नहि जिनके, ज्ञान–ध्यान गुण बल हैं ॥२॥
शान्त दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दर तुल्य अचल है ॥३॥
'भागचन्द' तिनको नित चाहै, ज्यो कमलनि को अलि है ॥४॥

श्री पद्मप्रभ जिनपूजन

जय जय पद्म जिनेश पद्मप्रभ पावन पद्माकर परमेश ।
वीतराग सर्वज्ञ हितकर पद्मनाथ प्रभु पूज्य महेश ॥
भवदुख हर्ता मंगलकर्ता षष्टम तीर्थंकर पद्मेश ।
हरे अमगल प्रभु अनादि का पूजन का है यह उद्देश्य॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय अत्र अवतर अवतर सवाष्ट , ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ. ठ , ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अत्र मम सान्निहितो भव-भव वषट्।

शुद्ध भाव का धवलनीर लेकर जिन चरणो मे आऊँ।
जन्म मरण की व्याधि मिटाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ॥
परम पूज्य पावन परमेश्वर पदमनाथ प्रभु को ध्याऊँ ।
रोग शोक सताप क्लेश हर मगलमय शिवपद पाऊँ ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि

शुद्ध भाव का शीतल चदन ले प्रभु चरणो मे आऊँ ।
भव आताप व्याधि को नाशूँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ॥ परम पूज्य ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय ससारतापविनाशनाय चन्दन नि ।

शुद्ध भाव के उज्जवल अक्षत ले जिन चरणो मे आऊँ ।
अक्षय पद अखड मैं पाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ॥ परम पूज्य ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षत नि ।

शुद्ध भाव के पुष्प सुरभिमय ले प्रभुचरणो मे आऊँ ।
कामवाण की व्याधि नशाऊँ नाचूँगाऊँ हर्षाऊँ ॥ परम पूज्य ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

शुद्ध भाव के पावन चरु लेकर प्रभु चरणो मे आऊँ ।
क्षुधा व्याधि का बीज मिटाऊँ नाचूँगाऊँ हर्षाऊँ॥ परम पूज्य ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नेवेद्य नि ।

शुद्ध भाव की ज्ञान ज्योति लेकर प्रभु चरणों में आऊँ ।
मोहनीय भ्रम तिमिर नशाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ॥ परम पूज्य ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

शुद्ध भाव की धूप सुगन्धित ले प्रभु चरणों में आऊँ ।
अष्टकर्म विध्वंस करूँ मैं नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ॥ परम पूज्य ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय अष्ट कर्म विनाशनाय धूप नि ।

शुद्ध भाव सम्यक्त्व सुफल पाने प्रभु चरणों मे आऊँ ।
शिवमय महामोक्ष फल पाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ॥ परमपूज्य ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फल नि स्वाहा ।

शुद्ध भाव का अर्घ अष्टविध ले प्रभु चरणो मे आऊँ ।
शाश्वत निज अनर्घपद पाऊँ नाचूँ गाऊँ हर्षाऊँ ॥ परमपूज्य ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फल नि स्वाहा ।

पंचकल्याणक

शुभदिन माघ कृष्ण षष्ठी को मात सुसीमा हर्षाए ।
उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रीतिकर तज उर में आए ॥ १ ॥
नव वारह योजन नगरी रच, रत्न इन्द्र ने बरसाये ।
जय श्री पद्मनाथ तीर्थंकर जगती ने मंगल गाए ॥ २ ॥
ॐ ह्री श्रीमाघकृष्णषष्ठीदिने गर्भमगलप्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्ध्य नि ।

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को कौशाम्बी मे जन्म लिया ।
गिरि सुमेरु पर इन्द्रादिक ने क्षीरोदधि से नव्हन किया ॥
राजा धरणराज ऑगन मे सुर सुरपति ने नृत्य किया ।
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर जग ने जय जय नाद किया ॥ ३ ॥
ॐ ह्री श्री कार्तिककृष्णात्रयोदश्या जन्ममगलप्राप्ताय श्री पदमप्रभ जिनेद्राय अर्ध्य नि ।

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को तुमको जाति स्मरण हुआ ।
जागा उर वैराग्य तभी लोकान्तिक सुर आगमन हुआ ॥

तरु प्रियगु मनहर बन मे दीक्षाधारी तप ग्रहण हुआ ।
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर अनुपम तप कल्याण हुआ ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्री कार्तिककृष्णात्रयोदश्या तपोमगलप्राप्ताय श्री पदमप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

चैत्र शुक्ल पुर्णिमा मनोहर कर्म घाति अवसान किया ।
कौशाम्वी वन शुक्ल ध्यान धर निर्मल केवलज्ञान लिया ॥
समवशरण मे द्वादश सभा जुडी अनुपम उपदेश दिया ।
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर, जग को शिव सन्देश दिया ॥ ५ ॥

ॐ ह्री श्री चैत्रशुक्लपूर्णिमाया ज्ञानमगल प्राप्ताय श्री पदमप्रभ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

मोहन कूट शिखर सम्मेदाचल से योग विनाश किया ।
फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी को प्रभु भवबन्धन का नाश किया ॥
अष्टकर्म हर ऊर्ध्व गमन कर सिद्ध लोक आवास लिया ।
जयति पद्मप्रभ जिन तीर्थेश्वर, शाश्वत आत्मविकास किया ॥ ६ ॥

ॐ ह्री श्री फल्गुनकृष्णचतुर्थ्या मोक्षमगलप्राप्ताय श्रीपदमप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

परम श्रेष्ठ पावन परमेष्ठी पुरुपोत्तम प्रभु परमानन्द ।
परमध्यान रत परमव्रह्मम प्रशान्तात्मा पद्मानन्द ॥ १ ॥
जय जय पद्मनाथ तीर्थकर जयजय जय कल्याणमयी ।
नित्य निरजन जनमन रजन प्रभुअनन्त गुण ज्ञानमयी ॥ २ ॥
राजपाट अतुलित वैभव को तुमने क्षण मे ठुकराया ।
निज स्वभाव का अवलम्वन ले परम शुद्ध पद को पाया ॥ ३ ॥
भव्य जनो को समवशरण मे वस्तु तत्त्व विज्ञान दिया ।
चिदानन्द चैतन्य आत्मा परमात्मा का ज्ञान दिया ॥ ४ ॥
गणधर एक शतक ग्यारह थे मुख्य वज्रचामर ऋषिवर ।
प्रमुख रात्रिपेणा सुआर्या श्रोता पशु नर सुर मुनिवर ॥ ५ ॥
सात तत्त्व छह द्रव्य बताए मोक्ष मार्ग सदेश दिया ।
तीन लोक के भूले भटके जीवो को उपदेश दिया ॥ ६ ॥

नि:शंकादिक अष्ट अग सम्यकदर्शन के बतलाये ।
अष्ट प्रकार ज्ञान सम्यक् बिन मोक्षमार्ग ना मिल पाए ॥ ७ ॥
तेरह विधि सम्यक् चारित का सत्स्वरूप है दिखलाया ।
रत्नत्रय ही पावन शिव पथ सिद्ध स्वपद को दर्शाया ॥ ८ ॥
हे प्रभु यह उपदेश ग्रहण कर मै जो निजका कल्याण करूँ ।
निज स्वरूप की सहज प्राप्ति कर पद निर्ग्रन्थ महान वरूँ ॥ ९ ॥
इष्ट अनिष्ट सयोगो मे मैं कभी न हर्ष विपाद करूँ ।
साम्यभाव धर उर अन्त प्रभव का वाद विवाद हरूँ ॥ १० ॥
तीन लोक मे सार स्वयं के आत्म द्रव्य का भान करूँ ।
पर पदार्थ की महिमा त्यागूं सुखमय भेद विज्ञान करूँ ॥ ११ ॥
द्रव्य भाव पूजन करते मैं आत्म चितवन मनन करूँ ।
नित्य भावना द्वादश भाऊँ राग द्वेप का हनन करूँ ॥ १२ ॥
तुम पूजन से पुण्य सातिशय हो भव-भव तुमको पाऊँ ।
जब तक मुक्ति स्वपद ना पाऊँ तव तक चरणो मे आऊँ ॥ १३ ॥
सवर और निर्जरा द्वारा पाप पुण्य सव नाश करूँ ।
प्रभु नव केवल लब्धि रमा पा आठो कर्म विनाश करूँ ॥ १४ ॥
तुम प्रसाद से मोक्ष लक्ष्मी पाऊं निज कल्याण करूँ ।
सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊँ परम शुद्ध निर्वाण वरूँ ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय गर्भजन्मतपज्ञानमोक्ष, पचकल्याणक प्रासाये पूर्णार्घ्यं नि ।

कमल चिह्न शोभित चरण, पद्मनाथ उरधार ।
मन वच तन जो पूजते, वे होते भवपार ॥

इत्याशीर्वाद

जाप्यमत्र-ॐ ह्रीश्री पद्मप्रभ जिनेन्द्राय नम ।

✓ उपकार को भूल जाना नीचता है लेकिन यदि कोई भली के बदले बुराई करे तो उसको तुरन्त ही भुला देना बड़प्पन का चिह्न है ।

श्री चन्द्रप्रभु जिन पूजा (देहरा)

॥ स्थापना॥

शुभ पुण्य उदय से ही प्रभुवर, दर्शन तेरा कर पाते है।
केवल दर्शन से ही प्रभु, सारे पाप मेरे कट जाते है॥
देहरे के चन्द्रप्रभु स्वामी, आह्वानन करने आया हू।
मम हृदय कमल मे आ तिष्ठो तेरे चरणो मे आया हू।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र। अत्र अवतर अवतर सवोषट् आह्वानन। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ. स्थापन। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण।

॥ अथाष्टक॥

भोगो मे फसकर हे प्रभुवर, जीवन को वृथा गॅवाया है।
इस जन्म -मरण से मुझे नहीं, छुटकारा मिलने पाया है॥
मन मे कुछ भाव उठे मेरं, जल झारी मे भर लाया हू।
मन के मिथ्या मल धोने को, चरणो मे तेरं आया हू॥

ॐह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय जन्म जरामृत्यु विनाशनाय जलम्।

निज अन्तर शीतल करने को, चन्दन घिसकर ले आया हू।
मन शान्त हुआ ना इमसे भी, तेरे चरणो मे आया हू॥
क्रोधादि कपायो के कारण, सतप्त हृदय प्रभू मेरा हैं।
शीतलता मुझको मिल जाये, हे नाथ सहारा तेरा हैं॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभुजिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चन्दन०।

पूजा में ध्यान लगाने को, अक्षत धोकर ले आया हू।
चरणो मे पुज चढा करके, अक्षयपद पाने आया हू॥
निर्मल आत्म होवे मेरा, सार्थक पूजा तब तेरी है।
निज शाश्वत अक्षयपद पाऊँ, ऐसी प्रभू विनती मेरी है॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय अक्षयपदप्रातये अक्षतम् नि०।

पर गध मिटाने को प्रभुवर, यह पुष्प सुगधी लाया हूं।
तेरे चरणों में अर्पित कर, तुमसा ही होने आया हूं॥
श्री चन्द्रप्रभु यह अरज मेरी भवसागर पार लगा देना।
यह काम अग्नि का रोग बढा, छुटकारा नाथ दिला देना॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि०।

दुख देती है तृष्णा मुझको, कैसे छुटकारा पाऊं मैं।
हे नाथ बता दो आज मुझे, चरणो में शीश झुकाऊं मैं॥
यह क्षुधा मिटाने को प्रभुवर, नैवेद्य बनाकर लाया हूं।
हे नाथ मिटादो क्षुधा मेरी, भव भव मे फिरता आया हूं॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम् नि०।

यह दीपक की ज्योती प्यारी, अँधियारा दूर भगाती है।
पर यह भी नश्वर है प्रभुवर, झंझा इसको धमकाती है॥
हे चन्द्रप्रभु दे दो ऐसा दीपक अज्ञान मिटा डाले।
मोहान्धकार हो नष्ट मेरा यह, ज्योति नई मन है बाले॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय मोहाधकार विनाशनाय दीप नि०।

शुभ धूप दशांग बना करके, पावक मे खेऊ हे प्रभुवर।
क्षय कर्मो का प्रभु हो जावे, जग का झंझट सारा नश्वर॥
हे चन्द्रप्रभु अन्तर्यामी, कैसे छुटकारा अब पाऊँ।
हे नाथ बता दो मार्ग मुझे, चरणों पर बलिहारी जाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूप नि०।

पिस्ता बादाम लवंगादिक, भर थाली प्रभु मैं लाया हूँ।
चरणों मे नाथ चढ़ा करके, अमृत रस पीने आया हूँ॥
करुणा के सागर दया करो मुक्ति का मार्ग अब पाऊँ।
देदो वरदान प्रभु ऐसा शिवपुर को हे प्रभुवर जाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्ताय फल नि०।

जल चन्दन अक्षत पुष्प चरू, दीपक घृत से भर लाया हूँ।
दस गध धूप फल मिला अर्घ ले, स्वामी अति हरपाया हूँ॥
हे नाथ अनर्घ पद पाने को, तेरे चरणो मे आया हूँ।
भव भव के वध कटे प्रभुवर, यह अरज सुनाने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्ताय अर्घ नि०।

॥ पचकल्याणक ॥

जव गर्भ मे प्रभुजी आये थे, इन्द्रो ने नगर सजाया था।
छ मास प्रथम ही आकर के, रत्नो का मेह बरसाया था॥
तिथि चैत्र वदी पचम प्यारी, जब गर्भ मे प्रभुजी आये थे।
लक्ष्मणा माता को पहले ही, सोलह सपने दिखलाये थे॥
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय चैत्र कृष्णा पचमी दिवसे गर्भ मगल म[illegible] अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ वेला मे प्रभु जन्म हुआ, बदि पौष एकादशि थी प्यारी।
श्री महासेन नृप के घर मे हुई, जय जयकार वडी भारी॥
पाडुकशिल पर अभिपेक कियौ, सव देव मिले थे चतुरनिकाय।
सो जिनचन्द्र जयो जग माही, विघ्नहरण ओर मगलदाय॥
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय पोप कृष्णा एकादश्या जन्म मगल मण्डिताय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

जग के झझट से मन ऊवा तप की ली श्री जिनने ठहराय।
पोप वदी ग्यारस को इन्द्र ने, तप कल्याण कियो हरपाय॥
सर्वर्तुक वन मे जाय विराजे केशलोच जिन कियो हरपाय।
देहर के श्री चन्द्रप्रभु को अर्घ चढाऊँ नित्य वनाय॥
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रपभु जिनेन्द्राय पोप कृष्णा एकदश्या तपो मगल मडिताय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

फाल्गुनवदी सप्तमी के दिन चार घातिया घात महान।
समवशरण रचना हरि कीनी, ता दिन पायो केवल ज्ञान॥

साढ़े आठ योजन परमित था, समवशरण श्री जिन भगवान।
ऐसे श्री जिन चन्द्र प्रभु को, अर्घचढ़ाय करूं नित घ्यान॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय फाल्गुन कृष्णा सप्तम्या केवल ज्ञान प्राप्ताय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण सुदी दसमी को प्रभु जी प्रकट भये देहरे मे आन।
सवत तेरह दो सहस्त्र ऊपर शुभ वृहस्पतिवार तादिन जान॥
जय जयकार हुई देहरे मे प्रकट हुए जब श्री भगवान।
चरणो मे आ अर्घ चढाऊँ प्रभु के दर्शन सुख की खान॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय श्रावण शुक्ला दशम्या देहरा स्थाने प्रकट रूपाय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

॥ जयमाला ॥

हे चन्द्रप्रभु तुम जगतपिता जगदीश्वर तुम परमात्मा हो।
तुम ही हो नाथ अनाथो के जग को निज आनद दाता हो॥
इन्द्रियो को जीत लिया तुमने जितेन्द्र नाथ कहाये हो।
तुम ही हो परम हितैषी प्रभु गुरु तुम हीनाथ कहाये हो॥
इस नगर तिजारा मे स्वामी देहरा स्थान निराला है।
दुख दुखियो का हरने वाला श्रीचन्द्र नाम अति प्यारा है॥
जो भाव सहित पूजा करते मनवाछित फल पा जाते हैं।
दर्शन से रोग नसे सारे गुन गान तेरा सब गाते है ॥
मै भी हूँ नाथ शरण आया कर्मो ने मुझको रोदा है।
यह कर्म बहुत दुख देते है प्रभु एक सहारा तेरा है॥
कभी जन्म हुआ कभी मरण हुआ हे नाथ बहुत दुख पाया है।
कभी नरक गया कभी स्वर्ग गया भ्रमता भ्रमता ही आया है॥
तिर्यच गति के दु ख सहे, ये जीवन बहुत अकुलाया है।
पशुगति मे मार सही भारी, बोझा रख खूब भगाया है॥

अजन से चोर अधम तारे भव सिन्धु से पार लगाया है।
सोमा की सुन कर टेर प्रभु नाग को हार बनाया है॥
मुनि समन्तभद्र को हे स्वामी आ चमत्कार दिखलाया है।
कर चमत्कार को नमस्कार चरणो मे शीश झुकाया है॥
इस पचमकाल मे हे स्वामी क्या अद्भुत महिमा दिखलाई।
दुख दुखियो का हरने वाली देहरे मे प्रतिमा प्रकटाई॥
शुभ पुण्य उदय से हे स्वामी दर्शन तेरा करने आया हूँ।
इस मोह जाल से हे स्वामी छुटकारा पाने आया हूँ॥
श्री चन्द्रप्रभु मोरी अर्ज सुनो चरणो मे तेरे आया हूँ।
भवसागर पार करो स्वामी यह अर्ज सुनाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय महार्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-देहरे के श्रीचन्द्र को भाव सहित जो ध्याय।
'मुंशी' पावे सम्पदा मनवाछित फल पाय॥

श्री शान्तिनाथ पूजन

या भवकानन मे चतुरानन, पापपनानन घेरी हमेरी।
आतमजानन मौनन ठान न, बान न होन दई शठ मेरी॥
तामद भानन आपहि हो, यह छान न आन, न आनन टेरी।
आन गही शरनागत को अब श्री पतजी पत राखहु मेरी॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर-अवतर सवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ -तिष्ठ ठ· ठ स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

हिमगिरिगतगगा, धार अभंगा प्रासुक सगा भरि भृंगा।
जरजनम मृतगा, नाशि अघगा, पूजि पदगा मृदुहिगा॥
श्री शान्तिजिनेश, नुतनाकेश, वृषचक्रेश चक्रेश।
हनि अरिचक्रेश हे गुनधेशं दयामृतेश मक्रेश॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि० स्वाहा।

वर बावन चंदन, कदली नंदन, घन आनंदन सहित घसों।
भवतापनिकदन, ऐरानन्दन, वंदि अमदन, चरन वसो ॥ श्री ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चदन नि० स्वाहा ।

हिमकर कर लज्जत, मलय सुसज्जन, अच्छत जज्जतभरिथारी।
दुखदारिद गज्जत, सदपदसज्जत, भवभयभज्जत अतिभारी ॥ श्री ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षत नि० स्वाहा।

मन्दार सरोजं, कदली जोजं, पुञ्ज भरोज मलयभर।
भरि कंचनथारी, तुम ढिग धारी, मदनविदारी, धीर धरं ॥ श्री ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वसनाय पुष्प नि० स्वाहा।

पकवान नवीने पावन कीने, षटरस भीने सुखदाई।
मनमोदन हारे, क्षुदा विदारे, आगै धारें गुन गाई ॥श्री ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् नि० स्वाहा।

तुम ज्ञानप्रकाशे, भ्रमतमनाशे, ज्ञेयविकाशे सुखरासे।
दीपक उजियारा यातैं धारा, मोह निवारा , निज भासे ॥ श्री ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् नि० स्वाहा।

चन्दन करपूरं, करि वर चूरं, पावक भूर मॉहि जुरं
तसु धूम उडावे, नाचत जावै, अलि गुजावैं, मधुर स्वरं ॥ श्री ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेद्राय अष्टकर्मविध्वसनाय धूपम् नि० स्वाहा।

बादम खजूर, दाडिम पूर, निम्बुक भूर लै आयो।
तासो पद जज्जो, शिवफल सज्जो, निजरसरज्जो उमगायो ॥ श्री ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेद्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् नि० स्वाहा ।

वसु द्रव्य संवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुनाधारी, यातै थारी शरनारी ॥ श्री ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य नि० स्वाहा।

पचकल्याणक

अतिस सातय भादव जानिये, गरभमंगल ता दिन मानिये।
सचि किया जननी पद् चर्चन, हम करैं इत ये पद अर्चनं॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्या गर्भमगलमण्डिताय-श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अर्ध्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

जनम जेठ चतुर्दशी श्याम हैं, सकल इन्द्रसु आगत धाम है ।
गजपुरै गज साजि सबै तबै, गिरि जजे इत मै जजि हौ अबै ॥

ॐ ह्री ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्या जन्ममगलमडिताय श्री शान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा ।

भव शरीर सुभोग.असार है, इमि विचार तबै तप धार हैं ।
भ्रमर चौदस जेठ सुहावनी, धरममेह जजो गुन पावनी ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्या तपोमगलमडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा ।

शुकल पौष दशैं सुखरास हैं, परम केवलज्ञान प्रकाश हे ।
भवसमुद्र-उधारन देवकी, हम करे नित मगल सेवकी ॥

ॐ ह्री पौषशुक्लदशम्या ज्ञानमगलमडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा ।

असित चौदशि जेठ हने अरी, गिरीसमेद थकी शवतिय वरी ।
सकल इन्द्र जजै तित आइकै, हम जजै इत मस्तक नाइकैं ॥

ॐ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्या मोक्षमगलमडिताय श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

शान्ति शान्तिगुन मडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपडिते सदा ।
मैं तिन्हे भगतमंडिते सदा, पूजिहो कलुपहंडते सदा ॥
मोच्छहत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुन रत्नमाल हो ।
मै अबै सुगुनदाम ही घरो, ध्यावते तुरित मुक्ति-ती वरो ॥

जय शान्तिनाथ चद्रुपराज, भवसागर में अद्भुत जहाज ।
तुम तजि सरवारथसिद्धथान, सरवारथजुत गजपुर महान ।।
तित जन्म लियौ आनन्द धार, हरि ततछिन आयो राजद्वार ।
इन्द्रानी जाय प्रसूत-थान, तुमको कर में ले हरष मान ।।
हरि गोद देय सो मोदधार, सिर चमर अमर ढारत अपार ।
गिरिराज जाय तित शिला पांडु, तापैथाप्यो अभिषेक मांडु ॥
तित पञ्चम उदधितनों सुवार, सुर कर कर करि ल्याये उदार ।
तब इन्द्र सहसकर कर अनन्द, तुम सर धारा ढारयो सुमन्द ॥
अघघघ घघघघ धुनि होत घोर, भभ भभ भभ घघ घघ कलश शोर।
दृम दृम दृमदृम बाजत मृदग, झन नन नन नन नन नूपुरंग ॥
तन नन नन नन नन तनन तान, धन नन नन घटा करत ध्वान ।
ताथेई थेई थेई थेई थेई सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहि भाल ॥
चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट हट नट शट विराट ।
इमि नाचत राचत भगत रंग, सुर लेत जहां आनन्द संग ॥
इत्यादि अतुल मंगल सुठाट, तित बन्यो जहाँ सुरगिरि विराट ।
पुनि करि नियोग पितुसदन आय, हरि सौंप्यौंतुम ततित वृद्ध थाय ॥
पुनि राजमाहि लहि चक्ररत्न, भोग्यौ छहखड करि धरम जत्न ।
पुनि तप धर केवलरिद्धि पाय, भविजीवन को शिवमग बताय ॥
शिवपुर पहुचे तुम हे दिनेश, गुनमण्डित अतुल अनंत भेष ।
मैं ध्यावतु हौं नित शीश नाय, हमरी भवबाधा हरि जिनाय ॥
सेवक अपनो निज जान जान, करुना कर भौभय भान भान ।
यह विघन मूल तरु खण्ड खण्ड, चत चिन्तत आनन्द मड मड ॥
श्री शान्ति महता शिवतियकता, सुगुन अनन्ता भगवन्ता ।
भवभ्रमन हनता, सौख्य अनन्ता, दातारं तारनवन्ता ॥
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(छन्द रूपक)

शान्तिनाथ जिनके पद पंकज, जो भवि पूजैं मनवचकाय ।
जनम जनम के पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय ॥
मन वांछित सुख पावै सौ नर, बाँचे भगतिभाव अतिलाय ।
तातैं 'वृन्दावन' नित बन्दै, जातैं शिवपुरराज कराय ॥

(पुष्पांजलि क्षपेत् इत्याशीर्वादः)

निरखो अंग अंग जिनवर के

निरखो अंग अंग जिनवर के जिनसे झलके शान्ति अपार ॥टेक॥
चरण कमल जिनवर कहें घूमा सब संसार ।
पर क्षण भंगुर जगत मे निज आत्म तत्त्व ही सार ॥
यातें पद्मासन बिराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ॥१॥

हस्त युगल जिनवर कहें पर का करता होय ।
ऐसी मिथ्या बुद्धि से ही भ्रमण चतुर्गति होय ॥
यातें पद्मासन विराजे जिनवर झलके शान्ति अपार ॥२॥

लोचन द्वय जिनवर कहें, देखा सब संसार ।
पर दुःख मय गति चतुर में ध्रुव आत्म तत्त्व ही सार ॥
यातें नाशा दृष्टि विराजे जिनवर झलके शान्ति अपार ॥३॥

अन्तर्मुख मुद्रा अहो, आत्म तत्त्व दरशाय ।
जिन दर्शन कर निज दर्शन पा, सतगुरु वचन सुहाय ।
यातें अन्तर्दृष्टि विराजे जिनवर, झलके शान्ति अपार ॥४॥

पार्श्वनाथजिन पूजन

तीर्थंकर पार्श्वनाथ अश्वसेन के प्रभु के चरणो मे करूँ नमन।
राजदुलारे वामादेवी के नन्दन॥
अतचारी भवतारी योगीश्वर जिनवर वन्दन।
श्रद्धा भाव विनय से करता श्री चरणों का मैं अर्चन ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अत्र अवतर-अवतर सवौषट, ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अत्र तिष्ठ, ठः ठ स्थापन, ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

समकित जल से तो अनादि की मिथ्याभ्रांति हटाऊँ मैं।
निज अनुभव से जन्ममरण का अन्त सहज पाजाऊँ मैं॥
चिन्तामणि प्रभु पार्श्वनाथ की पूजन कर हर्षाऊँ मैं।
संकटहारी मगलकारी श्री जिनवर गुण गाऊँ मै ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि ।

तन की तपन मिटाने वाला समकित चन्दन भेट चढाऊँ मै।
भव आताप मिटाने वाला समकित चन्दन पाऊँमैं ॥ चिन्ता ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि ।

अक्षत चरण समर्पित करके निजस्वभाव में आऊँमैं ।
अनुपम शान्त निराकुल अक्षय अविनश्वर पद पाऊँमैं ॥ चिन्ता ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षत नि ।

अष्ट अंगयुत सम्यक् दर्शन पाऊँ पुष्प चढाऊँ मैं।
कामबाण विध्वंस करूँ निजशील स्वभाव सजाऊँ मैं ॥चिन्ता ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

इच्छाओं की भूख मिटाने सम्यक् पथ पर आऊँ मैं ।
समकित का नैवेद्य मिले तो क्षुधा रोग हर पाऊं मै ॥ चिन्ता ५ ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्य नि ।

मिथ्यातम के नाश हेतु यह दीपक तुम्हे चढाऊँ मैं।
समकित दीप जले अन्तर मे ज्ञानज्योति प्रगटाऊँमैं ॥ चिन्ता ॥६ ॥
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि ।

समकित धूप मिले तो भगवन् शुद्ध भाव मे आऊँमैं ।
भाव शुभाशुभ धूम्र बन उड जाये धूप चढाऊँमैं ॥चिन्ता ॥७॥
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

उत्तमफल चरणो मे अर्पित आत्मध्यान ही ध्याऊँ मैं।
समकित का फल महामोक्षफल प्रभु अवश्य पा जाऊँ मैं ।। चिन्ता ॥८॥
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वसनाय धूप नि ।

छह द्रव्यो से भी श्रेष्ठ द्रव्य, नव तत्वो से भी परम तत्व।
सच्चिदानद आनंद कंद सर्वोत्कृष्ट निज आत्म तत्व॥ चिन्ता ॥९॥
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं नि ।

श्री पंचकल्याणक

प्राणत स्वर्ग त्याग आये माता वामा के उर श्रीमान।
कृष्ण दूज वैशाख सलोनी सोलह स्वप्न दिखे छविमान॥
पन्द्रह मास रत्न बरसे नित मंगलमयी गर्भ कल्याण ।
जय जय पार्श्वजिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जयजय दयानिधान॥१॥
ॐ ह्रीं वैशाखकृष्ण द्वितीया गर्भकल्याण प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

पौष कृष्ण एकादशमी को जन्मे, हुआ जन्म कल्याण।
ऐरावत गजेन्द्र पर आये तब सौधर्म इन्द्र ईशान॥
गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि से किया दिव्यअभिषेक महान।
जय जय पार्श्वजिनेश्वरप्रभु परमेश्वर जय जय दयानिधान ॥२॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकदश्या जन्मकल्याणप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

बाल ब्रह्मचारी व्रतधारी उर छाया वैराग्य प्रधान।
लौकांतिक देवों ने आकर किया आपका जय जय गान॥

पौष कृष्ण एकादशमी को हुआ आपका तप कल्याण।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय जय दयानिधान ॥३॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्या तप कल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

कमठ जीव ने अहिक्षेत्र पर किया घोर उपसर्ग महान।
हुए न विचलित शुक्ल ध्यानधर श्रेणी चढ़े हुए भगवान ॥
चैत्र कृष्ण की चौथ हो गई पावन प्रगट्यो केवलज्ञान ।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जय जय दयानिधान ॥४॥

ॐ ह्री चैत्रकृष्ण चतुर्थी दिनेज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन बने अयोगी हे भगवान।
अन्तिम शुक्ल ध्यानधर सम्मेदाचल से पाया पदनिर्वाण॥
कूट सूवर्णभद्र पर इन्द्रादिक ने किया मोक्ष कल्याण।
जय जय पार्श्व जिनेश्वर प्रभु परमेश्वर जयजय दयानिधान ॥५॥

ॐ ह्रीं श्री श्रावणशुक्ल सप्तम्या मोक्षकल्याणक प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

तेईसवे तीर्थंकर प्रभु परम ब्रह्ममय परम प्रधान।
प्राप्त महा कल्याण पचक. पार्श्वनाथ प्रणतेश्वर प्राण॥१॥
वाराणसी नगर अति सुन्दर विश्वसेन नृप परम उदार।
वामा देवी के घर जन्मे जग मे छाया हर्ष अपार ॥२॥
मति श्रुत अवधि ज्ञान के धारी बाल ब्रह्मचारी त्रिभुवान ।
अल्प आयु मे दीक्षाधर कर पच महाव्रत धरे महान॥३॥
चार मास छद्मस्थ मौन रह वीतराग अरहन्त हुए।
आत्म ध्यान के द्वारा प्रभु सर्वज्ञ देव भगवन्त हुए॥४॥

बैरी कमठ जीव ने तुमको नौ भव तक दुख पहुँचाया ।
इस भव मे भी संवर सुर हो महा विघ्न करने आया ॥५॥
किया अग्निमय घोर उपद्रव भीषण झंझावात चला ।
जल प्लावित हो गई धरा पर ध्यान आपका नहीं हिला ॥६॥
यक्षी पद्मावती यक्ष धरणेन्द्र विघ्न हरने आये ।
पूर्व जन्म के उपकारो से हो कृतज्ञ तत्क्षण आये ॥७॥
प्रभु उपसर्ग निवारण के हित शुभ परिणाम हृदय छाये।
फण मण्डप अरु सिंहासन रच जय जय जयप्रभु गुणगाये ॥८॥
देव आपने साम्य भाव धर निज स्वरूप को प्रगटाया।
उपसर्गों पर जय पाकर प्रभु निज कैवल्य स्वपद पाया ॥९॥
कमठ जीव की माया विनशी वह भी चरणो मे आया।
समवशरण रचकर देवो ने प्रभु का गौरव प्रगटाया ॥१०॥
जगत जनो को ओंकार ध्वनिमय प्रभु ने उपदेश दिया।
शुद्ध बुद्ध भगवान आत्मा सबकी है सदेश दिया ॥११॥
दश गणधर थे जिनमे पहले मुख्य स्वयभू गणधर थे।
मुख्य आर्यिका सुलोचना थी श्रोता महासेन वर थे ॥१२॥
जीव, अजीव, आश्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा, मोक्ष महान।
ज्यो का त्यो श्रद्धान तत्त्व का सम्यक दर्शन श्रेष्ठ प्रधान ॥१३॥
जीव तत्त्व तो उपादेय है, अरु अजीव तो है सब ज्ञेय।
आश्रव बन्ध हेय हैं साधन संवर निर्जर मोक्ष उपादेय ॥१४॥
सात तत्त्व ही पाप पुण्य मिल नव पदार्थ हो जाते हैं।
तत्त्व ज्ञान बिन जग के प्राणी भव-भव मे दुख पाते हैं ॥१५॥
वस्तु तत्त्व को जान स्वयं के आश्रय मे जो आते हैं ।
आत्म चिंतवन करके वे ही श्रेष्ठ मोक्ष पद पाते हैं ॥१६॥

हे प्रभु। यह उपदेश आपका मैं निज अन्तर में लाऊँ।
आत्मबोध की महाशक्ति से मैं निर्वाण स्वपद पाऊँ ॥१७॥

अष्ट कर्म को नष्ट करुँ मैं तुम समान प्रभु बन जाऊँ।
सिद्ध शिला पर सदा विराजूं निज स्वभाव में मुस्काऊँ ॥१८॥

इसी भावना से प्रेरित हो हे प्रभु! की है, यह पूजन।
तुव प्रसाद से एक दिवस मैं पा जाऊँगा मुक्ति सदन ॥१९॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेंद्राय जयमाला अर्घ पूर्णार्घ्यं नि ।

सर्प चिन्ह शोभित चरण पार्श्वनाथ उर धार ।
मन, वच, तन जो पूजते वे होते भव पार ॥२०॥

इत्याशीर्वादः

जाप्यमन्त्र –ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः ।

(मालिनी छन्द)

जयति विजितदोषोऽमर्त्यमर्त्येन्द्रमौलि,
प्रविलसदुरुमालाभ्यर्चिताङ्घ्रिर्जिनेन्द्रः ।
त्रिजगदजगती यस्येदृशौ व्यश्नुवाते,
सममिव विषयेष्वन्योन्यवृत्तिं निषेद्धुम् ॥

अर्थः–जिन्होंने दोषों को जीता है, जिनके चरण देवेन्द्रों तथा नरेन्द्रों के मुकुटों में प्रकाशमान मूल्यवान मालाओं से पुजते हैं (अर्थात् जिनके चरणों में इन्द्र तथा चक्रवर्तियों के मणिमालायुक्त मुकुटवाले मस्तक अत्यन्त झुकते हैं) और (लोकालोक के समस्त पदार्थ एक दूसरे में प्रवेश को प्राप्त न हों) इस प्रकार तीन लोक और अलोक जिनमें एकसाथ ही व्याप्त हैं (अर्थात् जो जिनेन्द्र को युगपत् ज्ञात होते हैं) वे जिनेन्द्र जयवन्त हैं । • *श्रुतबिन्दु*

पुष्पो की कोमल मादकता मे पड़कर भरमाया था अब तक।
पीडा न काम की मिटी कभी निष्काम न बन पाया अबतक॥
भावो के पुष्प समर्पित कर मैं ., काम नशाने आया हूँ॥ हे महावीर ॥४॥
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय कामबाण विध्वसनाय पुष्प नि ।

नैवेद्य विविध खाकर भी तो यह भूख न मिटपाई अबतक ॥
तृष्णा का उदर न भरपाया, पर की महिमा गाई अबतक ।
भावो के चरु लेकर अब मैं तृष्णाग्नि बुझाने आया हूँ ।। हे महावीर ॥
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि ॥५ ॥

मिथ्याभ्रम अन्धकारछाया सन्मार्ग न मिल पाया अबतक ।
अज्ञान अमावस के कारण निज ज्ञान न लख पाया अबतक॥
भावो का दीप जला अन्तर आलोकजगानेआया हूँ ॥हे महावीर ॥६ ॥
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोहाधकार विनाशनाय दीप नि ।

कर्मो की लीला में पडकर भवभार वढाया है अब तक ।
ससार द्वद के फदे से निज धूम्र उडाया हैं अब तक॥
भावो की धूप चढाकर मै वसु कर्म जलाने आया हूँ ॥हे महावीर ॥७॥
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूप नि ।

सयोगी भावो से भव ज्वाला मे जलता आया अब तक।
शुभ के फल मे अनुकुल सयोगो को पा इतराया अब तक॥
भावो का फल ले निजस्वभाव का शिव पुलकाने आया हूँ ॥हे महावीर ॥८॥
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि

अपने स्वभाव के साधन का विश्वास नहीं आया अव तक।
सिद्धत्व स्वयं से आता है आभास नहीं पाया अब तक॥
भावो का अर्ध्य चढाकर मैं अनुपमपद पाने आया हूँ ॥हे महावीर ॥९॥
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ नि

श्री पंचकल्याणक

धन्य तुम महावीर भगवान धन्य तुम वर्धमान भगवान ।
शुभ आषाढ शुक्ला षष्ठी को हुआ गर्भ कल्याण॥
माँ त्रिशला के उर मे आये भव्य जनो के प्राण।
धन्य तुम महावीर भगवान ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री अषाढशुक्लाषष्ठया गर्भमगल प्राप्ताय महावीरजिनेंद्राय अर्घ्यं नि ।

चैत्र शुक्ल शुभ त्रयोदशी का दिवस पवित्र महान।
हुए अवतरित भारत भू पर जग को दुखमय जान ॥धन्य.॥२॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लात्रयोदश्या जन्मकल्याणक प्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जग को अथिर जान छाया मन मे वैराग्य महान।
मगसिर कृष्णदशमी के दिन तप हित किया प्रयाण ॥धन्य ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री मगसिर कृष्णदशम्या तप कल्याणक प्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्य नि

शुक्ल ध्यान के द्वारा करके कर्म घाति अवसान ।
शुभ वैशाख शुक्ल दशमी को पाया केवलज्ञान ॥धन्य ॥४॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ल दशम्या ज्ञानकल्याण प्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

श्रावण कृष्ण एकम के दिन दे उपदेश महान।
दिव्यध्वनि से समवशरण मे किया विश्व कल्याण ॥धन्य ॥५॥

ॐ ह्रीं श्रावणकृष्ण अमावश्या दिव्यध्वनि प्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को पाया पद निर्वाण।
पूर्ण परम पद सिद्ध निरन्जन सादि अनन्त महान ॥धन्य ॥६॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावश्या मोक्षपदप्राप्तय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि ।

जयमाला

जय महावीर त्रिशला नन्दन जय सन्मति वीर सुवीर नमन।
जय वर्धमान सिद्धार्थ तनय जय वैशालिक अतिवीर नमन॥१॥

तुमने अनादि से नित निगोद के भीषण दुख को सहन किया।
त्रस हुए कई भव के पीछे पर्याय मनुज मे जन्म लिया॥२॥

पुरुरवा भील के जीवन से प्रारम्भ कहानी होती है।
अनगिनती भव धारे जैसी मति हो वैसी गति होती है॥३॥

पुरुपार्थ किया पुण्योदय से तुम भरत पुत्र मारीच हुए।
मुनि बने और फिर भ्रमित हुए शुभ अशुभभाव के बीचहुए॥४॥

फिर तुम त्रिपृष्ट नारायण बन, हो गये अर्धचक्री प्रधान।
फिर भी परिणाम नहीं सुधरे भवभ्रमण किया तुमने अजान॥५॥

फिर देव नरक त्रियंन्च मनुज चारोगतियो मे भरमाये।
पर्याय सिह की पुनः मिली पांचों समवाय निकट आये॥६॥

अजितंजय ओर अमितगुण चारणमुनि नभ से भूपरआये।
उपदेश मिला उनका तुमको नयनो मे आसू भर आये॥७॥

सम्यक्त्व हो गया प्राप्त तुम्हे, मिथ्यात्त्व गया, व्रतग्रहणकिया।
फिर देव हुए तुम सिहकेतु सौधर्म स्वर्ग मे रमण किया॥८॥
फिर कनकोज्ज्वलविद्याधर हो मुनिव्रत से लातवस्वर्ग मिला।
फिर हुए अयोध्या के राजा हरिषेण साधुपद हृदयखिला॥९॥

फिर महाशुक्र सुरलोक मिला चयकरचक्री प्रियमित्र हुए।
फिर मुनिपद धारण करके प्रभु तुम सहस्त्रार मे देव हुए॥१०॥

फिर हुए नन्दराजा मुनि बन तीर्थंकर नाम प्रकृति बॉधी।
पुष्पोत्तर मे हो अच्युतेन्द्र भावना आत्मा की साधी॥११॥

तुम स्वर्गयान पुष्पोत्तर तज मां त्रिशला के उर मे आये।
छह मास पूर्व से जन्मदिवस तक रत्न इन्द्र ने बरसाये ॥१२॥
वैशाली के कुण्डलपुर मे हे स्वामी तुमने जन्म लिया।
सुरपति ने हर्षित गिरि सुमेरु पर क्षीरोदधि अभिषेककिया॥१३॥
शुभ नाम तुम्हारा वर्द्धमान रख प्रमुदित हुआ इन्द्रभारी ।
वालकपन मे क्रीड़ाकरते तुम मति श्रुतिअवधिज्ञान धारी॥१४॥
सजय अरु विजय महामुनियो को दर्शन का विचार आया।
शिशु वर्द्धमान के दर्शन से शका का समाधान पाया ॥५॥
मुनिवर ने सन्मति नाम रखा वे नमस्कार कर चले गये।
तुम आठवर्ष की अल्पआयु मे ही अणुव्रत मे ढले गये ॥१६॥
सगम नामक एक देव परीक्षा हेतु नाग वनकर आया।
तुमने निशक उसके फणपर चढ नृत्यकिया वह हर्षाया॥१७॥
तत्क्षण हो प्रगट झुकामस्तक वोला स्वामी शत शत वदन।
अति वीरवीर हे महावीर अपराध क्षमा करदो भगवन् ॥१८॥
गजराज एक ने पागल हो आतकित सवको कर डाला।
निर्भय उस पर आरुढ हुए पल भर मे शान्त वना डाला॥१९॥
भव भोगो से होकर विरक्त तुमने विवाह से मुख मोडा।
वस वाल व्रह्मचारी रहकर कदर्प शत्रु का मद तोडा ॥२०॥
जव तीस वर्ष के युवा हुए वैराग्य भाव जगा मन मे।
लौकातिक आये धन्यधन्य दीक्षा ली ज्ञानखण्ड बन मे ॥२१॥
नृपराज वकुल के गृह जाकर पारणा किया गौ दुग्धलिया।
देवो ने पंचाश्चर्य किये जन जन ने जय जयकार किया॥२२॥

उज्ज्यनी की शमशानभूमि मे जाकर तुमने ध्यानकिया।
सात्यिकी तनय भव रुद्र कुपित हो गया महाव्यवधान किया ॥२३ ॥

उपसर्ग रुद्र ने किया तुम आत्म ध्यान में रहे अटल ।
नतमस्तक रुद्र हुआ तब ही उपसर्ग जयी हुए सफल ॥२४॥

कौशाम्बी मे उस सती चन्दना दासी का उद्धार किया।
हो गया अभिग्रह पूर्ण चन्दना के कर से आहार लिया ॥२५ ॥

नभ से पुष्पो की वर्षा लख नृप शतानीक पुलकितआये।
बैशाली नृप चेतक बिछुडी चन्दना सुता पा हर्षाये ॥२६ ॥

सगमक देव तुमसे हारा जिसने भीषण उपसर्ग किए ।
तुम आत्मध्यान मे रहे अटल अन्तर मे समता भावलिए ॥२७ ॥

जितनी भी वाधाये आई उन सब पर तुमने जय पाई।
द्वादश वर्षो की मौन तपस्या और साधना फल लाई ॥२८ ॥

मोहारि जयी श्रेणी चढकर तुम शुक्ल ध्यान मे लीनहुए ।
ऋजुकूला के तट पर पाया केवल्य पूर्ण स्वाधीन हुए ॥२९ ॥

अपने स्वरुप में मग्न हुए लेकर स्वभाव का अवलम्बन।
घातियाकर्म चारो नाशे प्रगटाया केवलज्ञान स्वधन ॥३० ॥

अन्तर्यामी सर्वज्ञ हुए तुम वीतराग अरहन्त हुए।
सुरनरमुनि इन्द्रादिक बन्दित त्रैलोक्यनाथ भगवंत हुए ॥३१ ॥

विपुलाचल पर दिव्यध्वनि के द्वारा जग को उपदेशदिया।
जग की असारता बतलाकर फिर मोक्षमार्ग सदेश दिया ॥३२ ॥

ग्यारह गणधर में हेस्वामी। श्रीगौतम गणधर प्रमुखहुए।
आर्यिका मुख्य चंदना सती श्रोता श्रेणिक नृप प्रमुख हुए ॥३३ ॥

सोई मानवता जागउठी सुर नर पशु सबका हृदयखिला।
उपदेशामृत के प्यासो को प्रभु निर्मल सम्यक ज्ञान मिला ॥३४॥

निज आत्मतत्व के आश्रय से निजसिद्धस्वपद मिल जाता है।
तत्त्वो के सम्यक निर्णय से निज आत्मबोध हो जाता है ॥३५॥

यह अनंतानुबंधी कषाय निज पर विवेक से जाती है।
बस भेदज्ञान के द्वारा ही रत्नत्रय निधि मिल जाती है ॥३६॥

इस भरतक्षेत्र मे विचरण कर जगजीवो का कल्याण किया।
दर्शन ज्ञान चारित्रमयी रत्नत्रय पथ अभियान किया ॥३७॥

तुम तीस वर्ष तक कर विहार पावापुर उपवन मे आये।
फिर योग निरोध किया तुमने निर्वाण गीत सबनेगाये ॥३८॥

चारो अघातिया नष्ट हुए परिपूर्ण शुद्धता प्राप्त हुई ।
जा पहुंचे सिद्धशिलापर तुम दीपावली जग विख्यात हुई ॥३९॥

हे महावीर स्वामी! अब तो मेरा दुख से उद्धार करो।
भवसागर मे डूबा हू मे हे प्रभु! इस भव का भार हरो ॥४०॥

हे देव! तुम्हारे दर्शनकर निजरुप आज पहिचाना हे।
कल्याण स्वय से ही होगा यह वस्तुतत्व भी जाना हे ॥४१॥

निज पर विवेक जागा उरमे समकित की महिमा आई है ।
यह परम वीतरागी मुद्रा प्रभु मन मे आज सुहाई है ॥४२॥

तुमने जो सम्यक् पथ सबको बतलाया उसको आचरलूँ ।
आत्मानुभूति के द्वारा मैं शाश्वत सिद्धत्व प्राप्तकरलूँ ॥४३॥

मैं इसी भावना से प्रेरित होकर चरणों मे आया हूँ ।
श्रद्धायुत विनयभाव से मैं यह भक्ति सुमनप्रभु लाया हूँ ॥४४॥

उनको ना कोई रहे चाह, वे अपनालेवे मोक्ष राह ।
वे करें आतमा को प्रसिद्ध, वे अल्पकाल में होय सिद्ध ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला महार्घ्यम निर्वपामीति स्वाहा ।

भूतकाल प्रभु आपका, वह मेरा वर्त्तमान ।
वर्त्तमान जो आपका, वह भविष्य मम जान ॥

पुष्पाजलिं क्षिपेत्

श्री बाहुबली पूजन

जयति बाहुबलि स्वामी जय जय करूं वदना बारम्बार।
निज स्वरूप का आश्रय लेकर, आप हुए भवसागरपार ॥
हे त्रैलोक्यनाथ त्रिभुवन मे, छाई महिमा अपरम्पार ।
सिद्ध स्वपद की प्राप्ति हो गई, हुआ जगत मे जय जयकार ॥
पूजन करने मैं आया हूँ, अष्ट द्रव्य का ले आधार ।
यही विनय है चारो गति के, दुःख से मेरा हो उद्धार ॥

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलि स्वामिन्! अत्र अवतर अवतर सवांपट् ।
ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलि स्वामिन्! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलि स्वामिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

उज्ज्वल निर्मल जल प्रभु, पद पंकज मे आज चढाता हूँ ।
जन्म मरण का नाश करू , आनन्दकन्द गुण गाता हूँ ॥
श्री बाहुबलि स्वामी प्रभु, चरणो मे शीष झुकाता हूँ ।
अविनश्वर शिव सुख पाने को हे नाथ शरण मे आता हूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल ।

शीतल मलय सुगन्धित पावन चन्दन भेट चढ़ाता हूँ ।
भव आताप नाश हो मेरा, ध्यान आपका ध्याता हूँ ॥ श्रीबाहु. ॥

ॐ ह्रीं श्री जिन बहुबलिस्वामिने ससारतापविनाशनाय चन्दन ।

उत्तम शुभ्र अखण्डित तन्दुल, हर्षित चरण चढाता हूँ ।
अक्षय पद की सहज प्राप्ति हो, यही भावना भाता हूँ ॥ श्रीबाहु ॥

ॐ ह्रीं श्री जिन बहुबलिस्वामिनेअक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् ।

काम शत्रु के कारण अपना, शील स्वभाव न पाता हूँ ।
काम भाव का नाश करूँ मैं, सुन्दर पुष्प चढाता हूँ ॥ श्रीवाहु ॥

ॐ ह्री श्री जिन वहुवलिस्वामिने कामवाणविध्वसनाय पुष्प ।

तृष्णा की भीपण ज्वाला मे, प्रतिपल जलता जाता हूँ ॥
क्षुधा रोग से रहित वनू मैं, शुभ नैवेद्य चढाता हूँ ॥ श्री बाहु ॥

ॐ ह्रीं श्री जिन वाहुवलिस्वामिने क्षुधारोगविनाशनाय नेवेद्यम् ।

मोह ममत्व आदि के कारण, सम्यक् मार्ग न पाता हूँ ।
यह मिथ्यात्व तिमिर मिट जाय, प्रभुवर दीप चढाता हूँ ॥ श्रीवाहु ॥

ॐ ह्रीं श्री जिन वहुवलिस्वामिने मोहान्धकारविनाशनाय दोपम् ।

हैं अनादि से कर्म वन्ध दु:खमय, न पृथक् कर पाता हूँ ।
अष्टकर्म विध्वस करूं, अतएव सु धूप चढाता हूँ ॥ श्रीबाहु ॥

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुवलिस्वामिने अष्टकर्मविध्व सनाय धूपम् ।

सहज भाव सम्पदा युक्त होकर, भी भव दु ख मे पाता हूँ ।
परम मोक्ष फलशीघ्र मिले, उत्तम फल चरण चढाता हूँ ॥ श्रीवाहु ॥

ॐ ह्रीं श्री जिन वाहुवलिस्वामिने मोक्षफलप्राप्तये फलम् ।

पुण्य भाव से स्वर्गादिक पद, बार बार पा जाता हूँ ।
निज अनर्घ्य पद मिला न अब तक, इससे अर्घ्य चढाता हूँ ॥ श्रीबाहु ॥

ॐ ह्रीं श्री जिन बाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम् नि स्वाहा ।

जयमाला

आदिनाथ सुत बाहुबलि प्रभु, मात सुनन्दा के नन्दन ।
चरम शरीरी कामदेव तुम, पोदनपुरपति अभिनन्दन ॥

छह खण्डो पर विजय प्राप्त कर, भरत चढे वृषभाचल पर ।
अगणित चक्री हुए नाम लिखने को मिला न थल तिल भर ॥
मैं ही चक्री हुआ, अह का मान धूल हो गया तभी ।
एक प्रशस्ति मिटा कर अपनी, लिखी प्रशस्ति स्वहस्त जभी ॥
चले अयोध्या किन्तु नगर मे, चक्र प्रवेश न कर पाया ।
ज्ञात हुआ लघु भ्रात बाहुबलि सेवा मे न अभी आया ॥
भरत चक्रवती ने चाहा, बाहुबलि आधीन रहे ।
ठुकराया आदेश भरत का, तुम स्वतन्त्र स्वाधीन रहे ॥
भीषण युद्ध छिडा दोनो भाई के मन सताप हुए ।
दृष्टि मल्ल जल युद्ध भरत से करके विजयी आप हुए ॥
क्रोधित होकर भरत, चक्रवर्ती, ने चक्र चलाया हैं ।
तीन प्रदक्षिण देकर कर मे, चक्र आपके आया है ॥
विजय चक्रवर्ती पर पाकर, उर वैराग्य जगा तत्क्षण ।
राज्यपाट तज ऋषभदेवके, समवशरण को किया गमन ॥
धिक्-धिक् यह संसार और, इसकी असारता को धिक्कार ।
तृष्णा की अनन्त ज्वाला मे, जलता आया है ससार ॥
जग की नश्वरता का तुमने, किया चितवन बारम्बार ।
देह भोग ससार आदि से, हुई विरक्ति पूर्ण साकार ॥
आदिनाथ प्रभु से दीक्षा ले, व्रत सयम को किया ग्रहण ।
चले तपस्या करने बन मे, रत्नत्रय को कर धारण ॥
एक वर्ष तक किया कठिन तप, कायोत्सर्ग मौन पावन ।
किन्तु शल्य थी एक हृदय मे, भरत भूमि पर है आसन ॥
केवलज्ञान नहीं हो पाया, एक शल्य ही के कारण ।
परिषह शीत ग्रीष्म वर्षादिक, जय करके भी अटका मन ॥
भरत चक्रवर्ती ने आकर, श्री चरणो मे किया नमन ।
कहा कि वसुधा नही किसी की, मान त्याग दो है भगवान् ॥

तत्क्षण शल्य विलीन हुई, तुम शुक्ल ध्यान में लीन हुए ।
फिर अन्तर्मूहूर्त में स्वामी, मोहक्षीण स्वाधीन हुए ॥

चार घातियाकर्म नष्ट कर, आप हुए केवलज्ञानी ।
जय जयकार विश्व मे गूञ्जा, सारी जगती मुसकानी ॥

झलका लोकालोक ज्ञान मे, सर्व द्रव्य गुण पर्याये ।
एक समय में भूत भविष्यत्, वर्तमान सब दर्शाये ॥

फिर अघातिया कर्म विनाशे, सिद्ध लोक में गमन किया ।
पोदनपुर से मुक्ति हुई, तीनो लोको ने नमन किया ॥

महा मोक्ष फल पाया तुमने,ले स्वभावका अवलंबन ।
हे भगवान बाहुबलि स्वामी, कोटि कोटि शतशत वंदन ॥

आज आपका दर्शन करने, चरण शरण में आया हूँ ।
शुद्ध स्वभाव प्राप्त हो मुझको, यही भाव भर लाया हूँ ॥

भाव शुभाशुभ भव निर्माता, शुद्ध भाव का दो प्रभु दान ।
निज परिणति में रमण करूँ, प्रभु हो जाऊँ मैं आप समान ॥

समकित दीप जले अन्तर मे, तो अनादि मिथ्यात्व गले ।
राग द्वेष परिणति हट जाये, पुण्य पाप सन्ताप टले ॥

त्रैकालिक ज्ञायक स्वभाव का, आश्रय लेकर बढ़ जाऊँ ।
शुद्धात्मानुभूति के द्वारा, मुक्ति शिखर पर चढ़ जाऊँ ॥

मोक्ष लक्ष्मी को पाकर भी, निजानन्द रस लीन रहूँ ।
सादि अनन्त सिद्ध पद पाऊँ सदा सुखी स्वाधीन रहूँ ॥

आज आपका रूप निरख कर निज स्वरूप का भान हुआ ।
तुम सम बने भविष्यत् मेरा,यह दृढ़ निश्चय ज्ञान हुआ ॥

हर्ष विभोर भक्ति से पुलकित, होकर की है यह पूजन ।
प्रभु पूजन का सम्यक् फल हो, कटे हमारे भव बंधन ॥

चक्रवर्ती इन्द्रादि पद की नहीं कामना हैं स्वामी ।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम पद पाये हे अर्न्तयामी ॥

तुमको है कोटि कोटि सादर बन्दन स्वामी स्वीकार करो ।
हे मंगल मूर्ति तरण तारण अब मेरा बेड़ा पार करो ॥४५॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तायअर्घ्यं नि. ।

सिंह चिन्ह शोभित चरण महावीर उरधार ।
मन, वच, तन जो पूजते वे होते भव पार ॥

इत्याशीर्वाद

श्री महावीर पूजन

(स्थापना)

जो मोह माया, मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं ।
जो विपुल विघ्नो बीच मे भी, ध्यान धारण धीर हैं ॥
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर है ।
वे वन्दनीय जिनेश, तीर्थङ्कर स्वय महावीर हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिन ! अत्र अवतर अवतर सवौषट् ।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठः ।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

जिनके गुणो का स्तवन पावन करन अम्लान हैं ।
मल हरन निर्मल करन भागीरथी नीर समान है ॥
सतप्त-मानस शान्त हों जिनके गुणो के गान मे ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरं हमारे ध्यान मे ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जल नि स्वाहा ।

लिपटे रहे विषधर तदपि चन्दन विटप निर्विष रहे ।
त्यों शान्त शीतल ही रहो रिपु विघन कितने ही करें ॥सन्तप्त॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय ससारतापविनाशनाय चन्दनम् नि स्वाहा ।

सुख-ज्ञान-दर्शन-वीर जिन अक्षत समान अखण्ड हैं ।
हैं शान्त यद्यपि तदपि जो दिनकर समान प्रचण्ड हैं ।।सन्तप्त।।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षत निर्वापामीति स्वाहा ।

त्रिभुवनजयी अविजित कुसुमसर सुभट मारन सूर हैं ।
परगन्ध से विरहित तदपि निजगन्ध से भरपूर हैं ।।सन्तप्त।।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्प नि स्वाहा ।

यदि भूख हो तो विविध व्यंजन मिष्ट इष्ट प्रतीत हों ।
तुम क्षुधा-बाधा रहित जिन क्यो तुम्हे उनसे प्रीति हो ? सन्तप्त।।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि स्वाहा ।

युगपद् विशद् सकलार्थ झलके नित्य केवलज्ञान मे ।
त्रैलोक्यदीपक वीरजिन दीपक चढ़ाऊ क्या तुम्हे ?
संतप्त-मानस शान्त हो जिनके गुणो के गान मे ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान मे ।।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि स्वाहा ।

जो कर्म-ईन्धन दहन पावक पुञ्ज पवन समान हैं ।
जो हैं अमेय प्रमेय पूरण ज्ञेय ज्ञाता ज्ञान हे ।।संतप्त।।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

सारा जगत फल भोगता नित पुण्य एंव पाप का ।
सब त्याग समरस निरत जिनवर सफल जीवन आपका ।।सतप्त।।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा ।

इस अर्घ का क्या मूल्य है अनर्घ्य पद के सामने ?
उस परम-पद को पा लिया है पतितपावन आपने ।।सतप्त।।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य नि स्वाहा ।

पञ्चकल्याणक अर्घ्य

सित छटवीं आपाढ, माँ त्रिशला के गर्भ में ।
अन्तिम गर्भावास, यही जान प्रणमू प्रभो ॥

ॐ ह्रीं आपाढशुक्लपष्ठ्या गर्भमगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

तेरस दिन सित चैत, अन्तिम जन्म लियो प्रभू ।
नृप सिद्धार्थ निकेत, इन्द्र आय उत्सव कियो ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्या जन्ममगलमण्डिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

दशवी मंगसिर कृष्ण, वर्द्धमान दीक्षा धरी ।
कर्म कालिमा नष्ट, करने आत्मरथी बने ॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्पकृष्णदशम्या तपमगलमन्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सित दशवीं बैसाख, पायो केवलज्ञान जिन ।
अष्ट द्रव्यमय अर्घ्यं, प्रभुपद पूजा करें हम ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्या ज्ञानमगलमण्डिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

कार्तिक अमावस श्याम, पायो प्रभु निर्वाण तुम ।
पावा तीरथधाम, दीपावली मनाँये हम ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावस्या मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

यद्यपि युद्ध नहीं कियो, नाहिं रखे असि-तीर
परम अहिंसक आचरण, तदपि बने महावीर ॥

हे मोह-महादलदलन वीर, दुद्धर-तप सयम धरण धीर ।
तुम हो अनन्त आनन्दकन्द, तुम रहित सर्व जग दंद-फंद ॥

अघकरन करन-मन-हरन-हार, सुखकरन हरन भवदुखअपार ।
सिद्धार्थ तनय तन रहित देव, सुर-नर-किन्नर सब करत सेव ॥

मतिज्ञान रहित सन्मति जिनेश, तुम राग-द्वेष जीते अशेष ।
शुभ-अशुभ राग की आग त्याग, हो गये स्वय तुम वीतराग ॥

षट् द्रव्य और उनके विशेष, तुम जानत हो प्रभुवर अशेष ।
सर्वज्ञ-वीतरागी जिनेश, जो तुम को पहिचाने विशेष ॥

वे पहिचाने अपना स्वभाव, वे करे मोह-रिपु का अभाव ।
वे प्रगट करे निज-पर विवेक, वे ध्यावे निज शुद्धात्म एक ॥

निज आतम मे ही रहे लीन, चारित्र-मोह को करें क्षीण ।
उनका हो जावे क्षीण राग, वे भी हो जावे वीतराग ॥

जो हुए आज तक अरीहत, सबने अपनाया यही पथ ।
उपदेश दिया इस ही प्रकार, हो सबको मेरा नमस्कार ॥

जो तुमको नहि जाने जिनेश, वे पावे भव-भव भ्रमण क्लेश ।
वे मॉगे तुमसे धन-समाज, वैभव पुत्रादिक राज-काज ॥

जिनको तुम त्यागे तुच्छ जान, वे उन्हे मानते हैं महान ।
उनमें ही निशदिन रहे लीन, वे पुण्य-पाप मे ही प्रवीन ॥

प्रभु पुण्य-पाप से पार आप, बिन पहिचाने पावें संताप ।
संतापहरण सुखकरण सार, शुद्धात्मस्वरूपी समयसार ॥

तुम समयसार हम समयसार, सम्पूर्ण आत्मा समयसार ।
जो पहिचानें अपना स्वरूप, वे हो जावें परमात्मरूप ॥

ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणिभावनायैनमोअर्घ ॥ १४ ॥

जिन पूजा रचो परमारथसूं जिनआलय नृत्य महोत्सव ठाणों
गावत गीतबजावत ढोल, मृदंगके नाद सुधांग बखाणों ।
संग प्रतिष्ठा रचो जल जातरा सद्गुरुको सामोंकर आणो,
ज्ञान कहे जिनमार्ग प्रभावना भाग्य विशेषसुं जानहिं जाणों ।

ॐ ह्रीं मार्गप्रभावनाभावनायै नमो अर्घ ॥ १५ ॥

गौरव भाव धरी मनसे मुनि पुङ्गवको नित वत्सल कीजे,
शीलके धारक भव्यके तारक तासु निरन्तर स्नेह धरी जे ।
धेनु यथा निज बालक को अपने जिय छोड़ि न और पतीजे,
ज्ञान कहे भवि लोक सुनो जिनवत्सल भाव धरे अघ छीजे ।

ॐ ह्रीं प्रवचनवात्सल्यभावनाये नमो अर्घ ॥ १६ ॥

जाप - ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धिभावनायै नमः, ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै नमः, ॐ ह्रीं शीलव्रताय नमः, ॐ ह्रींअभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः ॐ ह्रीं सवेगाय नमः, ॐह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः, ॐ ह्रीं शक्तिततपसे नमः, ॐ ह्रीं साधुसमाध्ये नमः, ॐ ह्रीं वेयावृत्यकरणाय नमः, ॐ ह्रीं अर्हतभक्तिये नमः। ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये नमः ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तये नमः,ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये नमः, ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये नम·, ॐ ह्रींमार्गप्रभावनायैं नमः, ॐ ह्रीं प्रवचनवात्सलत्वाय नमः ॥ १६ ॥

जय माला दोहा

षोंडस कारण गुण करे, हरे चतुर गति वास ।
पाप पुण्य सब नास के, ज्ञान भानुपरकास ॥ १ ॥

चौपाई

दर्श विशुद्ध धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई ।
विनय महा धारेजो प्राणी, शिववनिता की सखी बखानी ॥

शील सदा दृढ़ जो नर पाले, सो औरन की आपद टाले ।
ज्ञान अभ्यास करे मन माहीं, ताके मोह महातम नाहीं ॥

जो संवेग भाव विस्तारै, स्वर्गमुक्ति पद आप निहारै ।
दान देय मन हर्ष विशेषे, इह भव यश परभव सुख देखै ॥

जो तप तपै खपै अभिलाषा, चूरे कर्म शिखरगुरु भाषा ।
साधुसमाधि सदा मन लावै तिहुंजग भोग भोगि शिवजावै ॥

निश दिन वैयावृत्य करैया, सो निश्चय भवनीर तिरैया ।
जो अरहन्त भक्ति मन आनै, सो जन विषय कपाय न जानै ॥

जो आचरज भक्ति करै हैं, सो निरमल आचार धरै हैं ।
बहुश्रुतवन्त भक्ति जो करई, सो नर सपूरण श्रुत धरई ॥

प्रवचन भक्ति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानन्द दाता ।
षट् आवश्य काल जो साधै, सोई रत्नत्रय आराधै ॥

धर्म प्रभाव करे जो ज्ञानि, तिन शिव मारग रीति पिछानी ।
वात्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै ॥

दोहा

ये ही षोड़श भावना, सहित धरै व्रत जोय ।
देव इन्द्र नागेन्द्र पद, 'द्यानत' शिव पद होय ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो अर्घ निर्वपामीति

सुन्दर षोडशकारण भावना निर्मल चित्त सुधारक धारै ।
कर्म अनेक हने अति दुर्धर जन्म जरा भय मृत्यु निवारै ॥

दु:ख दरिद्र विपत्ति हरै भव सागर को तर पार उतारै ।
ज्ञान कहे यही षोडशकारण कर्म निवारण सिद्धि सुधारै ॥

इत्याशीर्वाद: ।

अनजाने मनुष्य पर विश्वास करना और जाने हुये योग्य पुरुष पर सन्देह करना, दोनो ही बातें एक समान अगणित आपत्तियों की जननी हैं ।

पंचमेरु पूजा

तीर्थकरो के न्हवन-जलतैं भये तीरथ सर्वदा,
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंच मेरुनकी सदा ।
दो जलधि ढाई द्वीपमे सब गनत-मूल विराजहीं,
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहिसुख दुःखभाजही ।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बधि जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा-समूह ! अत्रावतरावतर सवोषट् ।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बधि जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा-समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ. ठ. ।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बधि जिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा-समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करो प्रणाम ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मन्दिर-विद्युन्मालि-पचमेरुसम्बन्धि-जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो जल निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जल केसर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥
पॉचों मेरु असी जिन धाम, सब प्रतिमा को करो प्रणाम ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालयस्थ-जिनेबिम्बेभ्यो ॥ चन्दन ॥ २ ॥

अमल अखड सुंगध सुहाय, अच्छतसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचो ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अक्षतम् ॥ ३ ॥

बरन अनेक रहे महकाय, फूलसौं पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पॉचों. ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो पुष्प ॥ ४ ॥

मन वांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजों श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ पाँचो ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालस्थ-जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्य ॥ ५ ॥

तम-हर उज्जवल ज्योति जगाय, दीपसो पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचो ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालस्थ-जिनबिम्बेभ्यो दीप ॥ ६ ॥

खेऊं अगर अमल अधिकाय, धूपसो पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखें नाथ परम सुख होय ॥ पाँचो ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचेत्यालस्थ-जिनबिम्बेभ्यो धूपं ॥ ७ ॥

सुरस सुवर्ण, सुगध सुभाय, फलसो पूजौं श्रीजिनराय ।
माहसुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचो ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचेत्यालस्थ-जिनबिम्बेभ्यो फल ॥ ८ ॥

आठ दरबमय अरघ वनाय, 'द्यानत'' पूजौं श्रीजिनराय ।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पाँचो ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि-जिनचैत्यालस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्य ॥ ९ ॥

जयमाला

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मंदर कहा ।
विद्युन्माली नाम, पंच मेरु जगमें प्रगट ॥

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै ।
चैत्यालय चारो सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥
ऊपर पंच-शतकपर सौहै, नंदन-वन देखत मन मोहै ।
चैत्यालय चारो सुखकारी, मन वच तन वदना हमारी ॥

ॐ ह्री श्री जिन बाहुबलिस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्ताये पूर्णार्घ्यम् ।

घर-घर मङ्गल छाए जग में वस्तु स्वभाव धर्म जाने।

वीत-राग विज्ञान ज्ञान से, शुद्धातम को पहिचाने॥

।। इत्याशीर्वाद:॥

सोलहकारण पूजन

सोलहकारण भाय तीर्थकर जे भये ।

हरपे इन्द्र अपार मेरुपर ले गये ॥

पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चावसो ।

हम हूँ पोडश कारण भावे भावसों ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिपोडशकारणेभ्यो अत्र अवतर अवतर, सवोपट् आह्वानन ।अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठ: ठ: स्थापन ।अत्र मम सन्निहिताणि भवत भवत वषट् सन्निधीकरणम् ।

कंचन झारी निर्मल नीर, पूजू जिनवर गुण गभीर ।

परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥

दर्श विशुद्ध भावना भाय सोलह तीर्थकर पद पाय ।

परम गुरु हो जय जयनाथ परम गुरु हो ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिपोडशकारणेभ्यो नम: जलम् ।

चंदन घसो कपूर मिलाय, पूजूँ श्री जिनवर के पाय ।

परमगुरू हो जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्श ॥ चंदन ॥

तन्दुल धवल अखड अनूप, पूजू जिनवर, तिहू जगभूप ।

परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो । दरश ॥ अक्षत॥

फूल सुगन्ध मधुप गुजार, पूजू जिनवर जग आधार ।

परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो । दरश । पुष्पं. ॥

सद नेवज बहु विधि पकवान, पूजूं श्रीजिनवर गुणखान ।

परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु-हो । दरश । नैवेद्यं: ॥

दीपक ज्योति तिमिर क्षयकार, पूजूं श्रीजिनकेवल धार ।
परमगुरु हो, जयजय नाथ परमगुरु हो । दरश:॥ दीप ॥
अगर कपूर गन्ध शुभ खेय, श्री जिनवर आगे महकेय ।
परमगुरू हो, जय जय नाथ परमगुरु हो । दरश ॥ धूपं ॥
श्रीफल आदि बहुत फलसार, पूजू जिनवाछितदातार ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो । दरश ॥ फल ॥
जल फल आठो द्रव्य चढाय, 'द्यानत' बरत करो मनलाय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरू हो । दरश ॥ अर्घ्यं ॥

सोलह कारण के सोलह अर्घ

दर्शन शुद्ध न होवत जो लग तो लग जीव मिथ्याती कहावे ।
काल अनत फिरो भवमे, महादु:खनको कहुँ पार न पावे ॥
दोष पचीस रहित गुण अम्बुधि, सम्यकदर्शन शुद्ध ठरावैं ।
ज्ञान कहे नर सोहि बडो, मथ्यिात्व तजे जिन मारग ध्यावैं ॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धिभावनाये नमो अर्घ ॥ १ ॥

देव तथा गुरुराय तथा तप सयम शील व्रतादिक धारी ।
पापके हारक काम के छारक शल्यनिवारक कर्म निवारी ॥
धर्म के धीर कषाय के भेदक पच प्रकार ससारके तारी ।
ज्ञान कहे विनय सुखकारक भाव धरो मन राखो विचारी ॥
ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नताभावनायै नमो अर्घं ॥ २ ॥

शील सदा सुखकारक है अतिचार विवर्जितनिर्मल कीजे ।
दानव देव करें तसु सेव विषानल भूत पिशाच पसीजे ॥
शीलबडो जगमे हथियार जु शीलको उपमा काहेकी दीजे ।
ज्ञान कहे नहिं शील बराबर ताते सदा दृढशील धरीजे ॥
ॐ ह्रीं शीलव्रतभावनायैं नमो अर्घ॥ ३ ॥

ज्ञान सदा जिनराजको भापित आलस छोड़ पढ़े जो पढ़ावे ।
द्वादश दोइअनेक हुं भेद सुनाम मती श्रुति पंचम पावे ॥
चार हुँ भेद निरन्तर भापित ज्ञान अभीक्षण शुद्ध कहावे ।
ज्ञान कहे श्रुत भेद अनेक जु लोकालोक हि प्रगट दिखावे ॥
ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगभावनायै नमो अर्घ ॥ ४ ॥

भ्रातन तातन पुत्र कलत्रन दुर्जन सज्जन ए सब खोटो ।
मन्दिर सुन्दर काय सखा सबको इहको हम अन्तर मोटो ॥
काउ के भाव धरी मन भेदन नाहिं सवेग पदारथ छोटो ।
ज्ञानकहे शिवसाधन को जिमि साहको काम करैजू बंणेटो ॥
ॐ ह्रीं सवेगभावनायै नमो अर्घ ॥ ५ ॥

पात्र चतुर्विध देख अनूपम दान चतुर्विध भावसुं दीजै,
शक्ति समान अभ्यागतको अति आदरसे प्रणिपत्य करीजे ।
देवत जै नर दान सुपात्रहि तास अनेकहिं कारण सीजे,
दोलत ज्ञान देहि शुभ दान जु भोग सुभूमि महासुख लीजे ।
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागभावनायै नमो अर्घ ६ ॥

कर्म कठोर गिरवानको निज शक्ति समान महातप कीजे,
बारह भेद तपे तप सुन्दर पाप जलांजलि काहे न दीजे ।
भाव धरी तप घोर करी नर जन्मसदा फल काहे न लीजे,
ज्ञान कहे तप जे नर'भावत ताके अनेकहि पातक छीजे ।
ॐ ह्रीं शक्तितस्तपोभावनायै नमो अर्घं ॥ ७ ॥

साधुसमाधि करोनर भावकपुण्य बड़ोउपजे अघ छीजे,
साधुकी संगति धर्मको कारण भक्ति करे परमारथ भीजे ।
साधुसमाधि करे भव छूटत कीर्ति छटा त्रैलोक मे गाजे,
ज्ञान कहे यह साधु बड़ो गिरि शृङ्ग गुफा बिच जाय बिराजे.।
ॐ ह्रीं साधुसमाधिभावनायै अर्घं ॥ ८ ॥

कर्म के योग व्यथा उदई मुनि पुंगव को तसु भेषज कीजे,
पित्त कफानल सांस भगन्दर तापको मूल महामद छीजे ।

भोजन साथ बनायके औषध पथ्य कुपथ्य विचारके दीजे,
ज्ञान कहे नित ऐसी वैय्यावृत्य करे तसु देव पसीजे ।
ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तिभावनायै नमो अर्घं ॥ ९ ॥

देव सदा अरिहन्त भजो जेइ दोष अठारा किये अति दूरा,
आप पखाल भये अतिनिर्मल कर्म कठोर किये चकचूरा ।
दिव्य अनन्त चतुष्टय शोभित घोर मिथ्यान्ध निवारण सूरा,
ज्ञान कहे जिनराज अराधो, निरन्तर जे गुण मन्दिर पूरा ।
ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तिभावनाये नमो अर्घं ॥10॥

देवत ही उपदेश अनेक सु आप सदा परमारथ धारी,
देश विदेश बिहार करें दश धर्म धरे भव पार उतारी ।
ऐसे आचारज भाव धरी भज सो शिव चाहत कर्म निवारी,
ज्ञान कहे गुरू भक्ति करो नर देखत हो मनमाहि विचारी ।
ॐ ह्रीं आचार्यभक्तिभावनाये नमो अर्घं ॥ ११ ॥

आगम छन्द पुराण पढ़ावत साहित्य तर्क वितर्कबखाने,
काव्यकथा नव नाटक पूजन ज्योतिष वैद्यक शास्त्र प्रमाने ।
ऐसे बहुश्रुत साधु मुनीश्वर जो मनमें दोऊ भाव न आने,
बोलत ज्ञान धरी मनसा जु भाग्य विशेषतें जानहीं जाने ।
ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तिभावनाये नमो अर्घं ॥ १२ ॥

द्वादश अंग उपांग सदागम ताकी निरन्तर भक्ति करावे,
वेद अनूपम चार कहे तस अर्थ भले मन माहि ठरावे ।
पढ बहु भाव लिखो निज अक्षर भक्ति करी बहु पूज रचावे,
ज्ञान कहे जिन आगम भक्ति करो सद बुद्धि बहुश्रुत पावे ।
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्ति भावनायैं नमो अर्घं ॥ १३ ॥

भाव धरे समता सब जीवसु स्तोत पढ़े मुख से मनहारी,
कायोत्सर्ग करे मन प्रीतसु बंधन देव तणो भव तारी ।
ध्यान धरी मद दूर करी दोऊ वेर करे पड़कम्मन भारी,
ज्ञानकहे मुनिसोंधनवन्त जु दर्शन ज्ञान चरित्र उधारी ।

साढ़े बासठ सहस ऊंचाई,वन सुमनस शोभै अधिकाई ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ।

ऊँचा जोजन सहस-छतीसं, पाण्डुक-वन सौहे गिरि-सीस ।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥

चारों मेरु समान बखाने, भूपर भद्रसाल चहुँ जाने ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥

ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारो नंदनवन अभिलाखे ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥

साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सोमनस चार बहुरंगा ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ।।

उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारो वन शुभ गाये ।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वदना हमारी ॥

सुर नर तारन वदन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावे ।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ॥

दोहा

पंच मेरुकी आरती, पढ़े सुनै जो कोय ।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय ॥

ॐ ह्रीं पचमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घं नि

(पुष्पाजलि क्षिपेत)

मन में जो बात अपना हित करने वाली जम जाती है, आत्मा की लगन उसी ओर लग जाती है फिर आत्मा का उपयोग दूसरी ओर से हट कर उसी ओर लग जाता है तदनुसार आत्मा की समझ में जब अपना शुद्ध स्वरूप रूचिकर बन जाता है तब आत्मा की रूचि शरीर की सेवा करने की ओर से तथा इन्द्रयों की तृष्णा बुझाने वाले सासारिक विषय भोगो की ओर से हटकर आत्म अनुभव की ओर अग्रसर हो जाती है, उस समय उसको इन्द्रियों के भोग, नीरस, नि:सार, बुरे प्रतीत होने लगते हैं

दशलक्षणधर्म-पूजा

कविवर द्यानतरायजी

उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव है,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं ।
आकिंचन ब्रह्मचरज धरम दश सार हैं,
चहुँगति-दुखतैं काढि मुकति करतार हैं ॥

ॐ ह्रीउत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म । अत्र अवतरअवतर सवोषट् ।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ· ।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सोरठा

हेमाचलकी धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि ।
भव-आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-सत्य शौचसयम-तपस्त्यागकिञ्चन्य व्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जल निर्वपामिति स्वाहा ॥ १ ॥

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशो दिशा ।
भव आताप निवार दस लच्छन पूजौं सदा ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय चदन निर्व स्वाहा ॥ २ ॥

अमल अखडित सार, तंदुल चन्द्र समान शुभ ।
भव-आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्मायं अक्षत निर्व स्वाहा ॥ ३ ॥

फूल अनेक प्रकार, महके ऊरध-लोकलो ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

नेवज विविध निहार, उत्तम षट-रस संजुगत ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

बाति कपूर सुधार, दीपक-जोति सुहावनी ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगंधता ॥
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपमामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

फलकी जाति अपार, घ्राण-नयन-मन-मोहने ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥ ८ ॥
ॐ ह्री उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय फल निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसों ।
भव-आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अंगपूजा

पीड़ै दुष्ट अनेक, बॉध मार बहुविधि करैं ।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा ॥
उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह भव जस, पर भव सुखदाई ।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुनको औगुन कहैं अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बॉध मार बहुविधि करैं ।
घरतैं निकारैं तन विदारैं, बैर जो न तहॉ धरैं ॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यो नहि जीयरा ।
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमा-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

मान महाविषरूप, करहि नीच गति-जगत में ।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावे प्रानी सदा ॥
उत्तम मार्दव-गुन मन माना, मान करन को कौन ठिकाना।
वस्यो निगोद माँहितें आया, दमरी रूकन भाग विकाया ॥
रूकन विकाया भाग-वशतें, देव इकइन्द्री भया ।
उत्तम मुआ चाडाल हूवा, भूप कीडों में गया ॥
जीतव्य यौवन धन गुमान, कहा करै जलबुदबुदा ।
करि विनय बहु-गुन बड़े जनकी, ज्ञान का पावै उदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दव धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा ॥ २ ॥

कपट न कीजे कोय, चोरनके पुर ना बसै ।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥
उत्तम आर्जव-रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुःखदानी ।
मन में हो सो वचन उचरिये वचन होय सो तनसों करिये ॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने देख निरमल आरसी ।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अँगारसी ॥
नहिं लहै लछमी अधिक छल करि कर्म-बंध-विशेषता ।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवे, आपदा नहिं देखता ॥

ॐ ह्रीं उत्तमआर्जव धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

कठिन वचन मत बोल, पर निंदा अरु झूठ तज ।
साच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी ॥
उत्तम सत्य-वरत पालीजे, पर-विश्वासघात नहि कीजे ।
साचे झूँठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष साचे को दरब सब दीजिए ।
मुनिराज श्रावक की प्रतिष्ठा साँच गुण लख लीजिये ॥

ऊँचे सिंहासन बैठि वसुनृप, धरम का भूपति भया ।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया ॥
ॐ ह्रीं उत्तम सत्यधर्मांङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देहसो ।
शौच सदा निरदोष, धरम बडो संसार में ॥
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना ।
आशा पास महा दुखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान-ध्यान-प्रभावतें ।
नित गंगजमुन समुद्र न्हाये, अशुचि दोष सुभावतैं ॥
ऊपर अमल मल भरयो भीतर, कौनविधि घट शुचि कहैं ।
बहु देह मैली सुगुण थैली, शौचगुण साधू लहैं ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्री मन वश करो ।
संजमरतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं ॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव भव के भाजे अघ तेरे ।
सुरग-नरकपशुगति में नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाहीं ॥
ठाहीं पृथ्वी जल अग्नि मारुत, रूख त्रस करुना धरो ।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो ॥
जिस बिना नहि जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग कीच मे ।
इक घरी मत विसरो कर नित, आयु जममुख बीच मे ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमसयमधर्मांङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

तप चाहैं सुर राय, करमशिखर को वज्र है ।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यो न करे निज शक्तिसम ॥
उत्तम तप सब माहि बखाना, करमशिखर को वज्र समाना ।

बस्यो अनादि निगोद मंझारा, भू-विकलत्रय-पशु-तन धारा ॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता ।
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगिता ॥
अति महादुर्लभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरै ।
नरभव अनूपम कनक घरपर, मणिमयी कलशा धरैं ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दान चार परकार, चार संघको दीजिये ।
धन बिजली उनहार, नरभव लाहो लीजिये ॥

उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषधि शास्त्र अभय आहारा ।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता-दोनो-दान-सभारै ॥
दोनो संभारे कूप जलसम, दरब घर मे परिनया ।
निज हाथ दीजै साथ लीजै, खाय खोया वह गया ॥
धनि साधु शास्त्र अभयदिवैया, त्याग राग विरोध को ।
विन दान श्रावक साधु दोनो, लहैं नाहीं वोधको ॥

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

परिग्रह चौविस भेद, त्याग करै मुनिराजजी ।
तृष्णाभाव उछेद, घटती जान घटाइये ॥ ८ ॥

उत्तम आकिञ्चन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुखही मानो ।
फास तनक सी तनमे सालै, चाह लगोटी की दुख भालै ॥
भाले न समता सुख कभी नर, विना मुनि-मुद्रा धरैं ।
धनि नगन पर-तन नगन ठाडे, सुर असुर पायनि परैं ॥
घरमहि तृष्णा जो घटावे, रुचि नहीं ससार सौं ।
बहु धन बुरा हूँ भला कहिये, लीन पर-उपकारसौं ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमआकिचन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

शील बाढ नौ राख, ब्रह्मभाव अन्तर लखो ।
करि दोनो अभिलाख, करहु सफल नर भव सदा ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानो ।
सहैं बान-वर्षा बहु सूरे टिकै न नयन-बान लखि कूरे ॥
कूरे तिया के अशुचि-तन में, कामरोगी रति करें ।
बहु मृतक सडहिं मसानमाहीं, काक ज्यो चोचै भरै ॥
संसार है विष बेलि भारी तजि गये जोगीश्वरा ।
'द्यानत' धरम दशपैंडि चढिके, शिवमहल में पगधरा ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

दशलच्छन बन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय ।
कहौं आरती भारती, हम पर होउ सहाय ॥ १ ॥

उत्तम क्षमा जहाँ मन होई, अन्तर बाहर शत्रु न कोई ।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासे, नानाभेद ज्ञान सब भासे ॥
उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुरगति त्यागि सुगति उपजावे ।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोले, सो प्रानी संसार न डोले ॥
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, संतोषी गुण रतन भण्डारी ।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नरभव सफल करै ले साता ॥
उत्तम तप निरवांच्छित पाले, सो नर करम-शत्रु को टाले ।
उत्तम त्याग करै जो कोई, भोग-भूमि-सुर-शिवसुख होई ॥
उत्तम आकिंचनव्रत धारै, परम समाधिदशा विस्तारै ।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नरसुर सहित मुकतिफल पावै ॥

दोहा-करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि ।
अजर अमरपद को लहै, "द्यानत" सुखकी राशि ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य-दशलक्षणधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

रत्नत्रय-पूजा

कविवर द्यानत राय जी

चहुगति-फनि-विष-हरण-मणि दुःख-पावक-जल-धार।
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक-त्रयी निहार॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र अवतर अवतर सवौषट्।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्ठक (सोरठा छन्द)

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ॥१॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय जन्मजरारोगविनाशनाय जल निर्व।

चदन-केशर गारि, परिमल-महा सुरग-मय।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ॥२॥

ॐ ह्रीं मम्यक्रत्नत्रयाय भवातापविनाशनाय चन्दन निर्व।

तदुल अमल चितार, वासमती-सुखदासके।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥३॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व।

महकै फूल अपार, अलि गुजे ज्यो थुति करे।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ॥४॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय कामबाणविध्वसनाय पुष्प निर्व।

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगधयुत।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ॥५॥

ॐ ह्रीं सम्यकरत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नेवेद्य निर्व।

दीप रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगत मैं।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ॥६॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीप निर्व।

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूरकी
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ ॥७॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अष्टकरम दहनाय धूपं निर्व.।

फल शोभा अधिकार, लोंग छुहारे जायफल।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ॥८॥
ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फल निर्व ।

आठ दरब निरधार, उत्तम सो उत्तम लिये।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ॥९॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वं।

सम्यक् दरशनज्ञान, व्रत शिव-मग-तीनों मयी।
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजों व्रतसहित॥१०॥
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यकदर्शन-पूजा

द्यानत राय जी

दोहा

सिद्ध अप्ट-गुनमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान।
ज्ञान चरित जिहँ बिन अफल, सम्यक्दर्श प्रधान॥
ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शन! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शन! अत्र तिष्ठ तष्ठि ठ. ठः।
ॐ ह्रीं अष्टागसम्यग्दर्शन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सोरठा

नीर सुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥१॥
ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय जल निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै सीतल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥२॥
ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥३॥
ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय अक्षत निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अग पूजौं सदा॥४॥
ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अग पूजौं सदा॥५॥
ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय नेवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-ज्योति तमहार, घट पट परकाशै महा।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अ। पूजौं सदा॥६॥
ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जडता हरे।
सम्यग्दर्शनसार, आठ अग पूजौं सदा॥७॥
ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करे।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अग पूजौं सदा॥८॥
ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय फल निर्वपामीति स्वाहा।

जल गधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अग पूजौं सदा॥९॥
ॐ ह्रीं अष्टाग सम्यग्दर्शनाय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

आप आप निहचै लखै, तत्त्व-प्रीति व्योहार।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार ॥१॥
सम्यक् दरशन-रत्न गहीजै, निज-वच मे संदेह न कीजै।
इह भवविभव-चाह दुखदानी, पर भव भोग चहैं मत प्रानी ॥२॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।
पर दोष ढकिये, धरम डिगते, को सुथिर कर, हरखिये ॥३॥
चहु सघको वात्सल्य कीजै, धरमकी परभावना।
गुन आठसो गुन आठ लहिकै, इहां फैर न आवना ॥४॥

ॐ ह्रीं अष्टागसहित पचविशत दोषरहिति सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यग्ज्ञान पूजा

दोहा

पच्च भेद जाके प्रगट, ज्ञेय-प्रकाशन-भान।
मोह-तपन-हर चद्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान! अत्र अवतर अवतर सवौषट्।
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ट ठः ठ.।
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

सोरठा

नीर सुगध अपार, तृपा हरै मल छय करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय जल निर्वपामीति स्वाहा ।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ-भेद पूजौं सदा ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनुप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥३॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।
पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥४॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।
नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करे।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥६॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय नवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।
दीप-जोति तम-हार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥६॥
ॐ ह्रीं अष्टविध मम्यग्ज्ञानय दीप निर्वपामीति स्वाहा।
धूप घ्रान-सुखकार रोग विघन जडता हरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥७॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय धूप निर्वपामीति स्वाहा।
श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव फल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥८॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय फल निर्वपामीति स्वाहा।
जल गधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरू ।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥९॥
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

आप आप जानै नियत, ग्रन्थ पठन व्यौहार।
सशय विभ्रम मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार ॥

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौ सदा॥५॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक्चारित्राय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-जोति तम-हार, घट पट परकाशै महा।
सम्यकचारित सार तेरहविध पूजौं सदा॥६॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय दीप निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जडता हरै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौ सदा॥७॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय धूप निर्वपामीति स्वाहा।

श्री फल आदि विथार, निहचे सुर शिव फल करै।
सम्यकचारित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥८॥

ॐ ह्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फल निर्वपामीति स्वाहा ।

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यकचोरित सार, तेरहविध पूजौं सदा॥९॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

आप आप थिर नियत नय, तप सजम व्यौहार।
स्व-पर-दया दोनो लिये, तेरहविध दुखहार॥

सम्यक्चारित रतन सभालो, पाच पाप तजिकै व्रत पालो ।
पंचसमिति त्रय गुपति गहीजै, नरभव सफल करहु तन दीजै ॥१॥

छीजै सदा तनको जतन यह, एक सयम पालये ।
बहु रुल्यो नरक निगोद माही, विषय कषायन टालिये ॥२॥

शुभ करम जोग सुघाट आया, पार हो दन जात है ।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है ॥३॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घ्यं निर्व ।

समुच्चय जयमाला

सम्यग्दरशन ज्ञान व्रत, इन बिन मुकति न होय ।
अध पगु अरु आलसी, जुदे जलै दवलोय ॥१॥

चौपाई

तापै ध्यान सुथिर बन आवै, ताकै करमबध कट जावै ।
तासौं शिवतिय प्रीति बढावै, जो सम्यक् रतनत्रय ध्यावै ॥२॥

ताको चहुगति के दुख नाहीं, सो न परै भवसागर माही ।
जनम-जरा मृत दोप मिटावैं, जो सम्यक रतनत्रय ध्यावै ॥४॥

सोई शक्रचक्रिपद लेई, तीनलोक के सुख बिलसेई ।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक् रतनत्रय ध्यावे ॥५॥

सोई लोकालोक निहारै, परमानन्द दशा विस्तारै ।
आप तिरै औरन तिरवावै, जो सम्यक रतनत्रय ध्यावे ॥३॥

दोहा-एक स्वरूप प्रकाश निज, वचन कह्यो नही जाय ।
तीनभेद व्यौहार सब, 'द्यानत' को सुखदाय ॥७॥

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।

णाणाजीवा णाणाकम्मं, णाणाविहं हवे लद्धी ।
तम्हा वयणविवादं, सगपरसमएहिं वज्जिज्जो ॥

भांति-भांति के जीव (हैं), भांति-भांति का (उनका) कर्म है, (तथा) भिन्न-भिन्न प्रकार की (उनकी) योग्यता होती है; इसलिए स्व-पर मत से वचन-कलह को (तुम) दूर हटाओ ।

नियमसार-156

श्री ऋषि-मण्डल पूजा

स्थापना ॥ दोहा ॥

चौबीस जिन पद प्रथम नमि, दुतिय सुगणधर पाय ।
तृतीय पंच परमेष्ठि को, चौथे शारद माय ॥

मन वच तन ये चरन युग, करहूँ सदा परनाम ।
ऋषि मण्डल पूजा रचो, बुद्धि बल द्यो अभिराम ॥

चौबीस जिन वसु वर्ग पञ्च गुरु जे कहे ।
रत्नत्रय चव देव चार अवधी लहे ॥

अष्ट ऋद्धि चवदोय सूर ह्रीं तीन जू ।
अरहत दश दिग्पाल यन्त्र मे लीन जू ॥

दोहा - यह सब ऋषि मण्डल विषै, देवी देव अपार ।
तिष्ठ तिष्ठ रक्षा करो, पूजूं वसु विधि सार॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि चोवीम तीर्थङ्कर, अष्टवर्ग अर्हतदि पञ्चपद दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहितचतुर्निकायदेव चार प्रकार अवधिधारक श्रमण-अष्टऋद्धिसयुक्त चतुर्विशति सूरि, तीन ह्री, अर्हद् बिम्व, दसदिग्पाल यन्त्रसम्वन्धिपरमदव अत्र अवतर २ सवोषट् आह्वानन । अत्र तिष्ट तिष्ट ठ ठ स्थापनम् । अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।

क्षीर उदधि समान निर्मल, तथा मुनि-चित सारसों ।
भरभृङ्ग मणिमय नीर सुन्दर, तृषा तुरित निवारसो ॥

जहँ सुभग ऋषि मण्डल विराजैं पूजि मनवच तन सदा।
तिस मनोवांछित मिलत सब सुख स्वप्नमे दुख नहि कदा ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव-विनाशनसमर्थाय यन्त्रसम्बन्धि-परमदेवाय ॥ १ ॥
जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल ।

मलय चन्दन लाय-सुन्दर, गंध सों अलि झंकरै ।
सो लेहु भविजन कुम्भ भरिके तप्त दाह सबैं हरैं ॥
जहँ सुभग ऋषि ॥ तिस मनो ॥ चंदनं ॥

इन्दु किरण समान सुन्दर, ज्योति मुक्ता की हरै ।
हाटक रकेबी धारि भविजन, अखय पद प्राप्ती करै ।
जहा सुभग ऋषि । तिस मनो ॥ अक्षत ॥

पाटल गुलाब जुही चमेली, मालती बेला घने ।
जिस सुरभितै कलहंस नाचत, फूल गुंथि माला बने ॥
जहँ सुभग ऋषि । तिस मनो ॥ पुष्पं ॥

अर्द्ध चन्द्र समान फेनी, मोदकादिक ले घने ।
घृत पक्व मिश्रित रस सु पूरं, लख क्षुधा डाइनि हने ॥
जहँ सुभग ऋषि । तिस मनो ॥ नैवेद्य ॥

मणि दीप ज्योति जगाय सुन्दर वा कपूर अनूपकं ।
हाटक सुथाली माहि धरिके, वारि जिन पद भूपक ॥
जहँ सुभग ऋषि ॥ तिस मनो ॥ दीप ॥

चन्दन सु कृष्णागरू कपूर मगाय, अग्नि जराइये ।
सों धूप-धूम्र' आकाश लागी, मनहुँ कर्म उडाइये ॥
जहँ सुभग ऋषि ॥ तिस मनो ॥ धूप ॥

दाडिम सु श्रीफल आम्र कमरख, और केला लाइये ।
मोक्ष फल के पाइबे को, आश धरि करि आइये ॥
जहाँ सुभग ऋषि ॥ तिस मनो ॥ फलं ॥

जल फलादिक द्रव्य लेकर, अर्घ सुन्दर कर लिया ।
ससार-रोग निवार भगवन, वारि तुम पद मे दिया ॥
जहाँ सुभग ऋषि ॥ तिस मनो ॥ अर्घ्यं ॥

अर्घावली

वृपभ जिनेश्वर आदि अन्त महावीरजी ।
ये चउवीस जिनराज हरें भवपीरजी ॥
ऋपि मण्डल विच ह्रीं विपै राजै सदा ।
पूजू अर्घ वनाय होय नहि दुख कदा ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव-विनाशनसमर्थाय वृपभादिचतुर्विंशति तीर्थङ्कर-परमदेवाय अर्घ्यं निर्व स्वाहा ।

आदि कवर्ग सु अन्तजानि शापासहा,
ये वसुवर्ग महान् यन्त्र मे शुभ कहा ।
जल शुभ गन्धादिक वर दिव्य मगायके,
पूजहूँ दोउ करजोर शीश निज नायके ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रव-विनाशनसमर्थाय कवर्गादि अष्टवर्ग महिताय हम्ल्व्र्यूँपरमयन्त्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

परम उत्कृष्ट परमेष्टी पद पॉच को,
नमत शत इन्द्र खगवृन्द पद साच को ।
तिमिर अघ-नाश करणार्थ तुम अर्क हो
अर्घ लेय पूज्य पद देत वुद्धि तर्क हो ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थाय पचपरमेष्ठिपरमदेवाय अर्घ्यं ।

सुभग सम्यक् दर्शन ज्ञान जू, कह चारित्र सुधारक मान जू ।
अर्घ सुन्दर द्रव्य सु आठ ले, चरण पूजहूँ साज सु ठाठ ले ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थाय पचपरमेष्ठिपरमदेवाय अर्घ्यं ।

भवनवासी देव व्यन्तरज्योतिपी कल्पेन्द्र जू,
जिनगृह जिनेश्वर देव राजै रत्नके प्रतिबिम्ब जू ।
तोरण ध्वजा घण्टा विराजे चॅवर ढरत नवीन जू,
वर अर्घले तिन चरण पूजो हर्ष हिय अति लीन जू ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थेभ्यः भवनेन्द्र व्यतरेन्द्र-ज्योतिषेन्द्र-कल्पेन्द्र चतुःप्रकार देवगृहेषु श्रीजिन-चैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं नि ।

दोहा-अवधि चार प्रकार मुनि, धारत जे ऋषिराज ।
अर्घ लेय तिन चरण जजि, विघन सघन मिट जाय॥

ॐह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थेभ्यः चतुःप्रकार अवधिधारकमुनिभ्योअर्घ्यं नि

कही आठऋद्धि धरे जे मुनीशं, महाकार्यकारी बखानी गनीशं ।
जल गंध आदि दे जजों चर्न तेरे, लहों सुक्ख सबेरे हरो दुःखफेरे ।।

ॐ ह्रीं सवोपद्रवविनाशनसमर्थेभ्यः अष्टऋद्धिसहितमुनिभ्यो अर्घ्यं ।

श्री देवी प्रथम बखानी, इन आदिक चौबीसों मानी ।
तत्पर जिन भक्ति विषै हैं, पूजत सब रोग नशै हैं ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थेभ्यः श्री आदिचतुर्विंशतिदेवीभ्यो अर्घ्यं ।

यन्त्र विषैं वरन्यों तिरकोन, ह्रीं तहं तीन युक्त सुखभोन ।
जल फलादि वसु द्रव्य मिलाय, अर्घ सहित पूजूं शिरनाय ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थाय त्रिकोणमध्ये तीन ह्रीं सयुक्तायार्घ्यं ।

दस आठ दोष निरवारि, छियालीस महा गुण धारि ।
वसु द्रव्य अनूप मिलाय, तिनचर्न जजों सुखदाय ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थाय अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशत् महागुणयुक्ताय अर्हद्परमेष्ठिने अर्घ्यं ।

सोरठा-दश दिश दश दिग्पाल, दिशा नामसो नामवर ।
तिनगृह श्रीजिन आल, पूजौं मैं वन्दौं सदा ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थेभ्य दशदिग्पालेभ्यः जिनभक्तियुक्तेभ्योअर्घ्यं।

दोहा-ऋषिमण्डल शुभयन्त्र के, देवी देव चितारी ।
अर्घ सहित पूजहूँ चरन, दुख दारिद्र निवारि ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थेभ्य ऋषिमडल सम्बन्धिदेवीदेवेभ्योअर्घ्यं।

जयमाला

दोहा-चावीसो जिन चरन नमि, गणधर नाऊ भाल ।
शारद पद पकज नमू, गाऊ शुभ जयमाल ॥

जय आदीश्वर जिन आदिदेव, शत इन्द जज म करहूँ सेव ।
जय अजित जिनेश्वर ज अजीत, जे जीत भये भव ते अतीत ॥
जय सभव जिन भवकूप माहि, डूबत गखहु तुम शर्ण आहि ।
जय अभिनन्दन आनन्द देत, ज्यों कमलों पर रवि करत हेत ॥
जय सुमति सुमति दाता जिनन्द, जय कुमतितिमिर-नाशनदिनद ।
जय पद्मालकृत पद्मदेव, दिनरन करहुँ तव चरन सेव ॥
जय श्री सुपार्श्व भवपाश नाश, भवि जीवनकृदियो मुक्ति वास ।
जय चद जिनेश दया निधान, गुणसागर नागर सुख प्रमान ॥
जय पुष्पदत जिनवर जगीश, शत इन्द्र नमत नित आत्मशीश ।
जय शीतल वच शीतल जिनद, भवताप नशावत जगत चन्द ॥
जय जय श्रेयाश जिन अति उदार, भवि कठमाहि मुक्त सुहार ।
जय वासुपूज्य वासव खगेश, तुम स्तुति करि पुनि नमिहे हमेश ॥
जय विमल जिनेश्वर विमलदेव, मलरहित विराजत करहु सेव ।
जय जिन अनतके गुण अनत, कथनी कथ गणधर लहे न अत ॥
जय धर्म धुरधर धर्मवीर, जय धर्म चक्र शुचि ल्याय वीर ।
जय शांति जिनेश्वर शातभाव, भववन भटकत शिव मग लखाव ॥
जय कुन्थु कुन्थवा जीव पाल, सेवक पर रक्षा करि कृपाल ।
जय अरहनाथ अरि कर्म शैल, तपवज्र खण्ड लहि मुक्ति गैल ॥
जय मल्लि जिनेश्वर कर्म आठ, मल डारे पायौ मुक्ति ठाठ ।
जय सुव्रत मुनिसुव्रत धरन्त, जय सुव्रत पालत महन्त ॥
जय नम्मि नमत सुर वृन्द पाय, पद पकज निरखत शीश नाय ।
जय नेमि जिनद दयानिधान, फैलायो जग में तत्त्वज्ञान ॥

जय पारस जिन आलस निवारि, उपसर्ग रुद्र कृत जीत धारि ।
जय महावीर महाधीरधार, भवकूप थकी जगतै निकार ॥

जय वर्ग आठ सुन्दर अपार, तिन भेद लखत बुध करतसार ।
जय परमपूज्य परमेष्ठि सार, जिन सुमरत बरसे आनंदधार ॥

जय दर्शन ज्ञान चरित्र तीन, ये रत्न महा उज्जवल प्रवीन ।
जय चार प्रकार सुदेव सार, तिनके गृह जिन मंदिर अपार ॥

जो पूजै वसुविधि द्रव्य लाय, मैं इतजजि तुम पद शीशनाय ।
जो मुनिवर धारत अवधिचारि, तिन पूजें भवि भवसिंधु पार ॥

जो आठ ऋद्धि मुनिवर धरंत, ते मोपै करुणा करि महंत ।
चौबीस देवि जिन भक्ति लीन, बन्दन ताकोसु परोक्ष कीन ॥

जे ह्रीं तीन त्रैकोण माहि, तिन नमतसदा आनन्द पाहिं ।
जय जय जय श्रीअरहंत बिंब, तिन पद पूजूँ मैं खोई डिंब ॥

जो दश दिग्पाल कहे महान, जे दिशा नाम सो नाम जान ।
जे तिनके गृह जिनराज धाम, जे रत्नमयी प्रतिमाभिराम ॥

ध्वज तोरण घण्टा युक्तसार, मोतिन माला लटके अपार ।
जे ता मधि वेदी है अनूप, तहँ राजत है जिनराज भूप ॥
जय मुद्रा शान्ति विराजमान, जा लखि वैराग्य बढ़े महान ।
जे देवी देव सु आय आय, पूजैं तिन पद मन वचन काय ॥

जलमिष्ट सु उज्ज्वल पय समान, चंदन मलयागिरिको महान ।
जय अक्षत अनियारे सुलाय, जे पुष्पन की माला बनाय ॥

चरु मधुर विविध ताजी अपार, दीपक मणिमय उद्योतकार ।
जे धूप सु कृष्णागरु सुखेय, फल विविध भांति के मिष्ट लेय ॥

वर अर्घ अनूपम करत देव, जिनराज चरण आगे चढ़ेव ।
फिर मुखतैं स्तुति करते उचार, हो करुणानिधि संसार तार ॥

मैं दुःख सहे ससार ईश, तुमतै छानी नाहीं जगाश ।
जे इहविधि मौखिक स्तुति उचार, तिन नशत शीघ्र ससारभार ॥
इहविधि जो जन पूजन कराय, ऋपिमडल यंत्र सु चित्तलाय ।
जे ऋषिमडल पूजा करन्त, ते रोग शोक सकट हरन्त ॥
जे राजा रन कुल वृद्धिजान, जल दुर्ग सु गज केहरि बखान ।
जे विपति घोर अरु कहि मसान, भय दूर करे यह सकल जान ॥
जे राजभ्रष्ट ते राज पाय, पद-भ्रष्ट थकी पद शुद्ध थाय ।
धन अर्थी धन पावै महान, यामे सशय कछु नाहि जान ॥
भार्या अर्थी भार्या लहन्त, सुत अर्थी सुत पावे तुरन्त ।
जे रूपासोना ताम्रपत्र, लिख तापर यन्त्र महा पवित्र ॥
ता पूजैं भागैं सकल रोग, जे वात पित्त ज्वर नाशि शोग ।
तिन गृहतैं भूत पिशाच जान, ते भाग जाहि सशय न आन ॥
जे ऋषिमंडल पूजा करन्त, ते सुख पावत कहि लहैं न अत ।
जब ऐसो मैं मन माहि जान, तब भाव सहित पूजा सुठान ॥
वसुविधिसे सुन्दर द्रव्य ल्याय, जिनराजचरण आगे चढाय ।
फिर करत आरती शुद्धभाव, जिनराज सभी लख हर्ष आव ॥
तुम देवन के हो देव देव, इक अरज चित्त मे धारि लेव ।
जे दीनदयाल दया कराय, जो मैं दुखिया इह जग भ्रमाय ॥
जे इस भव वन मे वास लीन, जे काल अनादि गमाय दीन ।
मैं भ्रमत चतुर्गति विपिन माहि, दुख सहै सुक्ख को लेश नाहि ॥
ये कर्म महारिपु जोर कीन, जे मनमाने ते दुःख दीन ।
ये काहूँ को नहि डर धराय, इनतै भयभीत भयो अघाय ॥
यह एक जन्म की बात जान, मैं कह न सकत हूँ देवमान ॥

जब तुम अनंत परजाय जान, दरशायो संसृति पथ विधान ।
उपकारी तुम विन और नाहीं, दीखत मोकों इस जगत माहिं ॥

तुम सब लायक ज्ञायक जिनंद, रत्नत्रय सम्पति द्यो अमन्द ।
यह अरज करूं मैं श्रीजिनेश, भव भव सेवा तुम पद हमेश ॥

भवभव मे श्रावक कुल महान, भव भव में प्रकटित तत्त्वज्ञान ।
भवभव में व्रत हो अनागार, तिस पालनतै हो भवाब्धिपार ।

ये योग सदा मुझको लहान, हे दीनबन्धु करणा निधान ।
'दौलत ओसेरी' मित्र दोय, तुमशरण गही हरषित सुहोय ॥

धत्ता-जो पूजे ध्यावे भक्ति बढावे, ऋषिमंडल शुभयंत्र तनी ।
या भव सुखपावे सुजस लहावे, परभव स्वर्ग सुमोक्षधनी ॥

ॐ ह्रीं सर्वोपद्रवविनाशनसमर्थाय रोगशोक-सर्वसङ्कटहराय सर्वशान्तिपुष्टितुष्टिकराय श्रीवृषभादिचौबीस तीर्थङ्कर अष्टवर्गअरहतादि पचपद, दर्शन ज्ञान, चारित्र सहित चतुर्निकाय देव, चव प्रकार अवधिधारक श्रमण, अष्ट ऋद्धि सयुक्त, बीस चारि सूरि, तीन ह्रीं अर्हद्बिम्ब दशदिगपाल यन्त्र सम्बन्धिपरमदेवाय जयमाला पूर्णार्घ्य निर्व. स्वाहा ।

ऋषिमण्डल शुभ यन्त्र को, जो पूजे मन लाय ।
ऋद्धि सिद्धि ता घर, बसे विघन सघन मिट जाय॥

विघन सघन मिट जाय, सदा सुख वो नर पावै ।
ऋपि मण्डल शुभ यन्त्र तनी जो पूज रचावै ॥

भावभक्ति युत होय, सदा जो प्राणी ध्यावै ।
या भव मे सुख भोग, स्वर्ग की सम्पत्ति पावै ॥

या पूजा परभाव मिटे, भव भ्रमण निरन्तर ।
यातै निश्चय मान करो, नित भाव भक्ति घर ॥
सम्वत् भू ग्रह माहिजी, सावन सार असेत ।
पहर रात बाकी रही, पूर्ण करी सुख हेत ॥ इति ॥

इत्याशीर्वादः । पुष्पाजलि क्षिपेत् ।

निर्वाण क्षेत्र पूजा

द्यानतरायजी

(सोरठा)

परमपूज्य चौबीस, जिहँ-जिहँ थानक शिव गये ।
सिद्धभूमि निशदीस, मन वच तन पूजा करौ ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्राणि । अत्र अवतर, अवतर, सवौषट् आह्वानन । ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाण क्षेत्राणि । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन । ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाण क्षेत्राणि । अत्र मम सन्निहतानि भव भव वषट् सन्निधिकरण।

गीता छन्द

शुचि क्षीर-दधि-सम नीर निरमल, कनकझारी मे भरौं ।
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौ ॥
सम्मेदगिरि गिरनार चम्पा, पावापुरी कैलाशको ।
पूजो सदा चौबीसजिन, निर्वाण-भूमि निवासको ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थकर निर्वाण क्षेत्रेभ्यो जल नि स्वाहा ।

केशर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरौं ।
भवताप कौ सताप मेटो, जोरकर विनती करौ ॥ सम्मेद ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति-तीर्थंकर-निर्वाण क्षेत्रेभ्यो चन्दन नि ॥ २ ॥

मोती-समान अखंड तन्दुल, अमल आनन्दधरि तरौं ।
औगुन हरो गुन करो हमको, जोरकर विनती करौं । सम्मेद ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति-तीर्थंकर-निर्वाण-क्षेत्रेभ्यो अक्षतान नि ॥ ३ ॥

शुभ फूल रास सुवास वासित, खेद सव मन की हरौं ।
दुखधामकाम विनाश मेरो, जोरकर विनती करों ॥ सम्मेद ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति-तीर्थंकर-निर्वाण-क्षत्रभ्यो पुष्प नि ॥ ४ ॥

नेवज अनेक प्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरौं ।
यह भूख-दुखन टार प्रभुजी, जोरकर विनती करों ॥ सम्मेद ॥
ॐ ह्रींचतुर्विंशति-तीर्थंकर-निर्वाण-क्षेत्रेभ्यो. नैवेद्यं निर्व. ॥ ५ ॥

दीपक-प्रकाश उजास उज्जवल, तिमिरसेती नहीं डरौं ।
संशयविमोहविभ्रम-तमहर, जोरकर विनती करौं ॥ सम्मेद ॥
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकर-निर्वाण-क्षेत्रेभ्यो: दीप निर्व ॥ ६ ॥

शुभ धूप परम अनूप पावन, भावपावन आचरौं ।
सव करमपुञ्ज जलाय दीज्यो, जोरकर विनती करों ॥ सम्मेद ॥
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकर-निर्वाण-क्षेत्रेभ्यो: धूप नि ॥ ७ ॥

वहुफल मगाय चढाय उत्तम, चार गतिसों निरवरौं ।
निहचै मुकति-फल देहु मोकों, जोरकर विनती करो ॥ सम्मेद ॥
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकर-निर्वाण-क्षेत्रेभ्यो: फल नि ॥ ८ ॥

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरु फल, दीप, धूपायन धरौं ।
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोरकर विनती करौं । सम्मेद, ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकर-निर्वाण-क्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं नि ॥ ९ ॥

जयमाला (सोरठा)

श्री चौंवीसजिनेश, गिरिकैलाशादिक नमों ।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुषनिरवाणतैं ॥ १ ॥

(चौपाई १६ मात्रा)

नमो ऋषभ कैलाशपहारं, नेमिनाथ गिरनार निहार ।
वासुपूज्य चपापुर वन्दौ, सन्मति पावापुर अभिनन्दों ॥ २ ॥
वन्दौं अजित अजित पद दाता, वन्दौंसभव भवदु:खघाता ।
वन्दौं अभिनन्दन गणनायक, वन्दौं सुमति सुमति के दायक ॥ ३ ॥

वन्दौं पदम मुकति-पदमाकर, वन्दौंसुपास आश पासाहर ।
वन्दौं चन्द्रप्रभ प्रभुचन्दा, वन्दौं सुविधि सुविधिनिधि कन्दा ॥ ४ ॥

वन्दौं शीतल अघतपशीतल, वन्दौं श्रियॉस श्रियांस महीतल ।
वन्दौं विमल विमल उपयोगी, वन्दौं अनन्त अनन्त सुखभोगी ॥ ५ ॥

वन्दौं धर्म धर्म-विस्तारा, वन्दौं शान्ति शान्ति मनधारा ।
वन्दौं कुन्थु कुन्थु रखवालं, वन्दौं अर अरि-हर गुणमालं ॥ ६ ॥

वन्दौं मल्लि काममलचूर, वन्दौं मुनिसुव्रत व्रतपूरन ।
वन्दौं नमि जिन नमितसुरासुर, वन्दौं पार्श्व पास-भ्रमजगहर ॥ ७ ॥

बीसो सिद्ध भूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भूपर ।
एक वार वन्दे जो कोई, ताहि नरकपशुगति नहिं होई ॥ ८ ॥

नरपति नृप सुरशक्र कहावै, तिहुँजग भोग भोगि शिव पावे ।
विघनविनाशक मंगलकारी, गुण-विलास वन्दौं भवतारी ॥ ९ ॥

धत्ता-जो तीरथ जावै, पाप मिटावै ध्यावे गावै भक्ति करै ।
ताको जस कहिये सम्पत्ति लहिये, गिरिके गुणको बुधउचरै ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो. पूर्णार्घ्यं नि ॥ इति ॥

(पुष्पाञ्जलि क्षिपेत)

जोई दिन कटैं सोई आयु में अवसि घटैं,
बूँद-बूँद बीतै जैसे अंजुली को जल है ।
देह नित छीन होत, नैन-तेज हीन होत,
जोबन मलीन होत, छीन होत बल है ॥
आवै जरा नेरी, तकै अंतक-अहेरी, आवै-
परभौ नजीक, जात नरभौ निफल है ।
मिलकै मिलापी जन पूँछत कुशल मेरी,
ऐसी दशा माहीं मित्र ! काहे की कुशल है ॥

सरस्वती पूजा

दोहा

जनम-जरा-मृत्यु छय करै, हरै कुनय जडरीति ।
भव-सागरसो ले तिरे, पूजैं जिन वच प्रीति ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीवाग्वादिनि ! अत्र अवतर २ संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

क्षीरोदधि गंङ्गा, विमल तरंगा, सलिल अभङ्गा, सुखसङ्गा ।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी हित चंगा ॥
तीर्थङ्कर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई ।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी, पूज्य भई ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मँगाया, चन्दन आया, केशर लाया, रङ्ग भरी।
शारद पद वन्दौं, मन अभिनन्दौं, पापनिकंदौं, दाहहरी॥ती० ॥२॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चन्दसमं।
बहुभक्ति बढाई, कीरति गाई, होहु सहाई, मात ममं॥ती० ॥३॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बहु फूलसुवासं, विमलप्रकाशं, आनंदरासं, लाय धरे,
मम काम मिटायौ, शील बढायौ, सुख उपजायौ, दोष हरे। ।ती० ॥४॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विधि भाया, मिष्ट महा।
पूजूँ थुति गाऊँ प्रीति बढाऊँ, क्षुधा नशाऊँ हर्ष लहा॥ती० ॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर दीपकज्योतं, तमछयहोतं, ज्योति उदोतं, तुमहिं चढै।
तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घटभासक, ज्ञान बढै। ।ती० ॥६॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभगंध दशोंकर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं।
सब पाप जलावै, पुण्य कमावै, दास कहावे सेवत हैं ॥ती० ॥७॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्तीदेव्यै धूप निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुहारी, लौंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं।
मनवाछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता, ध्यावत हैं। ॥ती० ॥८॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै फल निर्वपामीति स्वाहा।

जल चदन अच्छत, फूल चरु अरु, दीप, धूप अति फल लावैं।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुख पावैं॥ ती० ॥ १०॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

ओकार ध्वनि सार, द्वादशाङ्ग वाणी विमल ।
नमो भक्ति उरधार, ज्ञान करै जडता हरे ॥

पहलो आचाराग बखानो, पद अष्टादश सहस प्रमानो ।
दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरुभाष ॥ १ ॥
तीजो ठाना अंग सुजान, सहस बियालिस पद सरधानं ।
चौथो समवायाग निहार, चौसठ सहस लाख इक धार ॥ २ ॥
पचम व्याख्या प्रज्ञप्ति दरस, दोय लाख अट्ठाइस सहस ।
छट्ठो ज्ञातृकथा विस्तार, पॉच लाख छप्पन हज्जार ॥ ३ ॥
सप्तम उपासकाध्ययनांगं, सत्तर सहस ग्यारह लाख भगं ।
अष्टम अन्तकृत दस ईस, सहस अट्ठाइस लाख तेईस ॥ ४ ॥
नवम अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं ।
दशम प्रश्न व्याकरण विचार, लाख तिरानव सोल हजार ॥ ५ ॥
ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं, एक कोटि चौरासी लाख ।
चार कोटि अरु पन्द्रह लाख, दो हजार सब पद गुरुसाखं ॥ ६ ॥

द्वादश दृष्टिवाद पन भेदं इक सौ आठ कोटिपद वेदं ।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पचपद मिथ्याहन हैं ॥ ७ ॥

इक सौ बारह कोटि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो ।
ठावन सहस पञ्च अधिकाने, द्वादश अग सर्व पद माने ॥ ८ ॥

कोटि इकावन आठहि लाख, सहस चुरासी छहसौ भाखं ।
साढ़े इक्कीस श्लोक बताये, एक एक पद के ये गाये ॥ ९ ॥

जा वानी के ज्ञान ते, सूझै लोक अलोक ।
'द्यानत' जग जयवन्त हो, सदा देत हूँ धोक ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(पुष्पाजलि क्षिपेत्)

जिनवाणी और मिथ्यावाणी

कैसे कर केतकी-कनेर एक कहि जाय,
आकदूध-गायदूध अन्तर घनेर है ।
पीरी होत रीरी पै न रीस करै कंचन की,
कहाँ काग-वानी कहाँ कोयल की टेर है ॥
कहाँ भान भारौ कहाँ आगिया बिचारौ कहाँ,
पूनौ को उजारौ कहाँ मावस-अँधेर है ।
पच्छ छोरि पारखी निहारौ नेक नीके करि,
जैनवैन-औरवैन इतनौं ही फेर है ॥

केतकी और कनेर को एक समान कैसे कहा जा सकता है ? उन दोनों मे तो बहुत अन्तर है । आक के दूध और गाय के दूध को एक समान कैसे कहा जा सकता है ? उन दोनो मे तो बहुत अन्तर है । इसीप्रकार यद्यपि पीतल भी पीला होता है, पर वह कचन की समानता नही कर सकता है । हे भाई ! जरा तुम ही विचारो ! कहाँ कोए की आवाज और कहाँ कोयल की टेर ! कहाँ दैदीप्यमान सूर्य ओर कहाँ बिचारा खद्योत ! कहाँ पूर्णिमा का प्रकाश और कहाँ अमावस्या का अन्धकार ! हे पारखी ! अपना पक्ष (दुराग्रह) छोडकर जरा सावधानीपूर्वक देखो, जिनवाणी और अन्यवाणी मे उपर्युक्त उदाहरणो की भाति बहुत अन्तर है । कहाँ जिनेन्द्रदेव की वाणी और कहाँ अन्यमतियो की वाणी ।

समुच्चय महाअर्घ

मैं देव श्री अर्हंत पूजूं, सिद्ध पूजू चाव सो ।
आचार्य श्री उवज्झाय पूजूँ, साधु पूजू भाव सो ॥
अर्हंत भाषित बैन पूजूँ द्वादशाग रची गनी ।
पूजूं दिगम्बर गुरु चरण, शिव हेत सब आशा हनी ॥
सर्वज्ञ भाषित धर्म दश विधि, दयामय पूजूं सदा ।
जजि भावना षोड़श रत्नत्रयं, जा बिना शिव नहीं कदा ।।
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम, चैत्य चैत्यालय जजू ।
पंचमेरु नंदीश्वर, जिनालय, खचर सुरि पूजित भजू ॥
कैलाश श्री सम्मेद गिरि गिरनार मैं पूजू सदा ।
चम्पापुरी, पावापुरी पुनि और तीरथ सर्वदा ॥
चौबीस श्री जिनराज पूजू, बीस क्षेत्र विदेह के ।
नामावली इक सहस बसु जय होय पति शिव गेहके ॥
जल गन्धाक्षत पुष्प चरू, दीप धूप फल, लाय ।
सर्व पूज्य पद पूजहू, बहु विधि भक्ति बढाय ॥

ॐ ह्रीं अर्हंत जी, सिद्धजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, सर्व साधुजी, पच परमेष्ठी द्वदशाग जिनवाणी, दश लाक्षणिक धर्म, सोलह कारण भावना सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र, रत्नत्रय, तीन लोक सम्बन्धी कृत्रिम, अकृत्रिम चैत्यालय पचमेरु सबधी बावन जिन चैत्यालय नन्दीश्वर सबधी बावन जिन चैत्यालय श्री सम्मेदशिखर, कैलाश गिरी, गिरनार, चम्पापुर आदि सिद्ध क्षेत्र, अतिशय क्षत्र, विद्यमान बीस तीर्थंकर, भगवान के एक हजार आठ नामश्री वृषभादि महावीर पर्यन्त, चतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो जलार्धं महाअर्घ्य निर्वपामिति स्वाहा ।

देव पूजा गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयमतपः ।
दानं चेति गृहस्थाणां, षट् कर्माणि दिने दिने ॥

शांति पाठ भाषा

(शांति पाठ बोलते समय पुष्प क्षेपण करते रहना चाहिये)

शातिनाथ मुख शशि उनहारी, शील गुणव्रत संयम धारी ।
लखन एकसौआठ बिराजै, निरखत नयन कमलदल लाजै ॥

पंचम चक्रवर्ति पदधारी, सोलम तीर्थङ्कर सुखकारी ।
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिन नायक, नमो शांतिहित शांतिविधायक ॥

दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा ।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुवप्रातिहार्य मनहारी ॥ ३ ॥

शांति जिनेश शांति सुखदाई, जगतपूज्य पूजौ शिरनाई ।
परम शान्ति दीजै हम सबको, पढै तिन्हें पुनि चार संघको ॥ ४ ॥

पूजै जिन्हे मुकुट हार किरीट लाके, इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके॥
सो शान्तिनाथ वरवंश जगत्प्रदीप, मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप ॥ ५ ॥

संपूजको को प्रतिपालको को यतीनको औ यतिनायकों को ।
राजा-प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले, कीजे सुखी हे जिन शांतिकोदे ।
होवे सारी प्रजाको सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवै वर्षा समयपै तिलभर न रहे व्याधियो का अंदेशा ।
होवै चोरी न जारी सुसमय वर्ते हो न दुष्काल भारी ।
सारे ही देश धारै जिनवर वृषको जो सदा सौख्याकारी
घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज ।
शाति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज ॥
शास्त्रो का हो पठन सुखदा लाभ सत्संगती का ।
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाकूं सभी का ॥
बोलूं प्यारे वचन हितके, आपका रूप ध्याऊं ।
तौलों सेऊं चरण जिनके, मोक्ष जौलौ न पाऊ ॥
तव पद मेरे हियमे, मम हिय तेरे पुनीत चरणो मे ।

तबलौं लीन रहौं प्रभु, जबलौं पाया न मुक्ति पद मैंने ॥ १० ॥

अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कुछ कहा गया मुझसे ।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि पुनि छुडाहु भवदुख से ।

हे जगबन्धु जिनेश्वर, पाऊं तब चरण शरण बलिहारी ।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मो का क्षय सुबोध सुखकारी ॥ १२ ॥

(परिपुष्पाजलि क्षेपण)

(यहॉ पर नौ बार णमोकार मत्र जपना चाहिये ।)

भजन

नाथ ! तेरी पूजा को फल पायो, मेरे यो निश्चय अब आयो ।
मेढक कमल पांखुडी मुख ले, वीर जिनेश्वर धायो ।
श्रेणिक गज के पगतल मुवो, तुरत स्वर्गपद पायो ॥ नाथ ॥

मैनासुन्दरी शुभ मन सेती, सिद्धचक्र गुण गायो ।
अपने पति को कोढ गमायो, गधोदक फल पायो ॥ नाथ ॥

अष्टापद में भरत नरेश्वर आदिनाथ मन लायो ।
अष्टद्रव्यसे पूज्या प्रभुजी अवधिज्ञान दरशायो ॥ नाथ ॥

अजन से सब पापी तारे, मेरो मन हुलसायो ।
महिमा मोटी नाथ तुम्हारी, मुक्तिपुरी सुख पायो ॥ नाथ ॥

थकि थकि हारेसुर नर खगपति, आगम सीख जतायो ।
'देवेन्द्रकीर्ति' गुरुज्ञान 'मनोहर', पूजा ज्ञान बतायो॥ नाथ ॥

स्तुति

तुम तरणतारणभवनिवारण, भविक-मन आनन्दनो ।
श्रीनाभिनन्दनजगतवन्दन, आदिनाथ निरजनो ॥ १ ॥

तुम आदिनाथ अनादि सेऊ, सेय पदपूजा करूँ ।
कैलाश गिरि परऋषभ जिनवर, पदकमल हिरदै धरू ॥ २ ॥

कृपा तिहारी ऐसी होय, जामन मरन मिटावो मोय ।
बार बार मैं विनती करूं, तुम सेये भवसागर तरूं ॥ १५ ॥

नाम लेत सब दुख मिट जाय, तुम दर्शन देख्यो प्रभु आय ।
तुम हो प्रभु देवन के देव, मैं तो करू चरण तव सेव ॥ १६ ॥

जिन पूजा तैं सब सुख होय,जिन पूजा सम और न कोय ।
जिन पूजाते स्वर्ग विमान, अनुक्रमतै पावैं निर्वाण ॥ १७ ॥

मैं आयो पूजन के काज, मेरो जन्म सफल भयो आज ।
पूजा करके नवाऊं शीश, मुझ अपराध क्षमहु जगदीश ॥ १८ ॥

सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान ।
मो गरीब की वीनती, सुन लीज्यो भगवान ॥ १९ ॥

पूजन करते देव की, आदि मध्य अवसान ।
सुरगनके सुख भोग कर, पावे मोक्ष निदान ॥ २० ॥

जैसी महिमा तुम विषै, और धरै नहि कोय ।
जो सूरज में जोति है, नहि तारागण सोय ॥ २१ ॥

नाथ तिहारे नामते, अघ छिनमाहि पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतै, अन्धकार विनशाय ॥ २२ ॥

बहुत प्रशंसा क्या करू, मैं प्रभु बहुत अजान ।
पूजाविधि जानू नहीं, शरण राखि भगवान ॥ २३ ॥
इस असार संसार मे, शरण नाहिं प्रभु कोय ।
यातें तव पद भक्त को, भक्ति सहाई होय ॥ २४ ॥ इति

(विसर्जन)

बिन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय ।
तव प्रसाद से परमगुरु, सो सब पूरण होय ॥ १ ॥

पूजनविधि जानो नहीं, नहिं जानो आह्वान ।
और विसर्जन हूँ नही, क्षमा करहु भगवान ॥ २ ॥

मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव ।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरणकी सेव ॥ ३ ॥

ध्याये जो जो देवगण, पूजे भक्ति प्रमाण ।
ते सब मेरे मन बसो, चौबीसों भगवान ॥ ४ ॥

इत्याशीर्वादः ॥ (आशिका लेना)

श्री जिनवरकी आशिका, लीजै शीश चढाय ।
भव-भवके पातक कटे, दुःख दूर हो जाय ॥ १ ॥

स्मरणीय आध्यात्मिक पद

अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ।
ज्यों शुक नभ-चाल बिसरि, नलिनी लटकायौ ॥

चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरश-बोध-मय विशुद्ध,
तज, जड़ रस फरस रूप पुद्गल अपनायौ ।
अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ॥१॥

इन्द्रिय-सुख-दुख में नित्त, पाग राग-रुख में चित्त
दायक भव-विपति-वृन्द, बन्ध को बढ़ायो ।
अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायो ॥२॥

चाह-दाह दाहै त्यागो न ताह चाहै,
समता-सुधा न गाहै, जिन-निकट जो बतायौ ।
अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ ॥३॥

मानुष भव सुकुल पाय, जिनवर-शासन लहाय,
'दौल' निज स्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायौ ।
अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ
ज्यों शुक नभ-चाल बिसरि नलिनी लटकायौ ॥४॥

शांति पाठ (संस्कृत)

शांतिजिन शशि-निर्मल-वक्त्र, शील-गुण-व्रत-सयम-पात्र ।
अष्टशतार्च्चित-लक्षण-गात्र, नोमि जिनोत्तममम्बुज-नेत्र ॥ १ ॥

पञ्चमभीप्सित-चक्रधराणा पूजितमिद्र-नरेन्द्र गणैश्च ।
शातिकर गण-शांति मभीप्सुः पोडष-तीर्थकर प्रणमामि ॥ २ ॥

दिव्य-तरूः सुर-पुष्प-सुवृष्टि र्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषो ।
आतपवारण-चामर-युग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥ ३ ॥

त जगदार्चित-शाति-जिनेन्द्र शातिकर शिरसा प्रणमामि ।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांति महयमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः, शक्रादिभिः सुरगुणैः स्तुत-पाद-पद्माः ।
ते मे जिनाः प्रवर-वश-जगत्प्रदीपा- स्तीर्थङ्कराः सतत-शान्तींकराभवन्तु ॥ ५ ॥

संपूजकाना प्रतिपालकाना यतीन्द्रःसामान्य-तपोधनाना।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शाति भगवान् जिनेन्द्रः ।
क्षेमं सर्व-प्रजाना प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपाल,
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ।। ६ ॥
दुर्भिक्षं चौर-मारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके,
जैनेन्द्रधर्मचक्रं प्रसरतु सततं सर्व-सौख्य-प्रदायि ॥ ७ ॥
प्रध्वस्त-घाति-कर्माणः केवलज्ञानः भास्कराः ।
कुर्वन्तु ते जगतः शान्ति वृषभाद्याः जिनेश्वराः ॥ ८ ॥
प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।
शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः संगतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा दोष वादे च मौनं ।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्त्वे ।
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥
तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पद-द्वये लीनं ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र । तावद्यावन्निर्वाण-सम्प्राप्ति : ॥ १० ॥

अक्खर-पयत्थ-हीणं मत्ता-हीण च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झ वि दुक्ख-क्खयं दिंतु ॥ ११ ॥

दुक्ख-खओ कम्मखओ समाहिमरणं च वोहि-लाहो य ।
मम होउ जगत-बान्धव तव जिणवर चरण-सरणेण ॥ १२ ॥

अथ विसर्जन :

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्त न कृतं मया ।
तत्सर्व पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ! ॥ १ ॥

आह्वाननं नैव जानामि नैव जानामि पूजनं ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ! ॥ २ ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ३ ॥

आहूता ये पुरा देवा, लब्ध भागा यथा क्रमम् ।
ते मयाभ्यर्चिंता भक्तया, सर्वे यान्तु यथा स्थिति ॥

सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारकं ।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनंजयतु शासनं ॥

आये जो जो देव गण, पूजे भक्ति प्रमाण ।
ते सब मेरे मन बसो, वीतराग भगवान् ॥

मेरे अर्जित पुण्य में सब हों भागीदार ।
दुख विघटे प्रगटे मंगलमय,दर्शन ज्ञानाचार ॥
मंगल, हो । मंगल हो ! मंगल हो ॥

सम्यकदृष्टी का भाव

सुख में नहीं जो नर हर्ष धरे, दुख में न विषाद करे मन में ।
धन पाकर जो न गुमान करे, नहीं दीन बने अधीन मन में ॥
तजि बैर विरोध प्रमोद धरे, लघुता गुरुता न गिने मन में ।
धन जीवन है उस जीवन का, समभाव धरे जग जीवन में ॥

जिनेन्द्र वंदना

चौबीसों परिग्रह रहित, चौबीसों जिन राज ।
वीतराग सर्वज्ञ जिन हितकर सर्व समाज ॥

१. श्री आदिनाथ वन्दना

श्री आदिनाथ अनादि मिथ्या मोह का मर्दन किया ।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान का दर्शन किया ॥
निज आतमा को जानकर निज आतमा अपना लिया ।
निज आतमा में लीन हो निज आतमा को पा लिया ॥

२. श्री अजितनाथ वन्दना

जिन अजित जीता क्रोध रिपु निज आतमा को जानकर।
निज आतमा पहिचान कर निज आतमा का ध्यान धर ॥
उत्तम क्षमा की प्राप्ति की बस एक ही है साधना ।
आनन्दमय ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना ॥

३. श्री सम्भवनाथ वन्दना

सम्भव असम्भव मान मार्दव धर्ममय शुद्धातमा ।
तुमने बताया जगत को सब आतमा परमातमा ॥
छोटे-बड़े की भावना ही मान का आधार है ।
निज आतमा की साधना ही साधना का सार है ॥

४ श्री अभिनन्दननाथ वन्दना

निज आतमा को आतमा ही जानना है सरलता ।
निज आतमा की साधना आराधना है सरलता ॥
वैराग्य जननी नन्दनी अभिनन्दनी है सरलता ।
है साधकों की संगिनी आनन्द जननी सरलता ॥

५. श्री सुमतिनाथ वन्दना

हे सर्वदर्शी सुमति जिन ! आनन्द के रस कंद हो ।
हो शक्तियों के संग्रहालय ज्ञान के घनपिण्ड हो ॥
निर्लोभ हो निर्दोष हो निष्क्रोध हो निष्काम हो ।
हो परम-पावन पतित-पावन शौचमय सुखधाम हो ॥

६. श्री पद्मप्रभ वन्दना

मानता आनन्द सब जग हासमें परिहास में ।
पर आपने निर्मद किया परिहास को परिहास में ॥
परिहास भी है परीग्रह जग को बताया आपने ।
हे पद्मप्रभ परमात्मा पावन किया जग आपने ॥

७. श्री सुपार्श्वनाथ वन्दना

पारस सुपारस है वही पारस करे जो लोह को ।
वह आतमा ही है सुपारस जो स्वयं निर्मोह हो ॥
रति-राग वर्जित आतमा ही लोक में आराध्य है ।
निज आतमा का ध्यान ही बस साधना है साध्य है ॥

८. श्री चन्द्रप्रभ वन्दना

रति-अरतिहर श्री चन्द्र जिन तुम ही अपूरव चन्द्र हो ।
निश्शेष हो निर्दोष हो निर्विघ्न हो निष्कंप हो ॥
निकलंक हो अकलंक हो निष्ताप हो निष्पाप हो ।
यदि है अमावस अज्ञजन तो पूर्णमासी आप हो ॥

९. श्री गुविधिनाथ (पुष्पदंत) वन्दना

विरहित विविध विधि सुविधि जिन निज आतमा मे लीन हो ।
हो सर्वगुण सम्पन्न जिन, सर्वज्ञ हो स्वाधीन हो ॥

शिवमग बतावनहार हो शत इन्द्र करि अभिवन्द्य हो ।
दुख:शोकहर भ्रमरोगहर संतोषकर सानन्द हो ॥

१०. श्री शीतलनाथ वन्दना

आपका गुणगान जो जन करें नित अनुराग से ।
सब भय भयकर स्वयं भयकरि भाग जावें भाग से ॥
तुम हो स्वयंभू नाथ निर्भय जगत को निर्भय किया ।
हो स्वय शीतल मलयगिरि से जगत को शीतल किया ॥

११. श्रीश्रेयासनाथ वन्दना

नरतन विदारन मरन-मारन मलिनभाव विलोकके ।
दुर्गन्धमय मलमूत्रमय नरकादि थल अवलोक के ॥
जिनके न उपजे जुगुप्सा समभाव महल मसान मे ।
वे श्रेय श्रेयस्कर शिरी (श्री) श्रेयास विचरें ध्यान मे ॥

१२ श्री वासुपूज्य वन्दना

निज आतमा के भान बिन सुख मानकर रति-राग मे ।
सारा जगत नित जल रहा है वासना की आग मे ॥
तुम वेद-विरहत वेदविद् जिन वासना से दूर हो ।
वसुपूज्यसुत बस आप ही आनन्द से भरपूर हो ॥

१३ श्री विमलनाथ वन्दना

बस आतमा ही बस रहा जिनके विमल श्रद्धान मे ।
निज आतमा बस एक ही नित रहे जिनके ध्यान मे ॥
सब द्रव्य-गुण-पर्याय जिनके नित्य झलके ज्ञान मे ।
वे वेद विरहित विमल जिन विचरे हमारे ध्यान मे ॥

१४ श्री अनन्तनाथ वन्दना

तुम हो अनादि अनत जिन तुम ही अखण्डानन्त हो ।
तुम वेद विरहत वेद-विद् शिव कामिनी के कन्त हो ॥

तुम सन्त हो भगवन्त हो तुम भवजलधि के अन्त हो ।
तुम में अनन्तानन्त गुण तुम ही अनन्तानन्त हो ॥

१५. श्री धर्मनाथ वन्दना

हे धर्म जिन सद्धर्ममय सत् धर्म के आधार हो ।
भवभूमि का परित्याग कर जिन भवजलधि के पार हो ॥
आराधना आराधकर आराधना के सार हो ।
धरमातमा परमातमा तुम धर्म के अवतार हो ॥

१६. श्री शान्तिनाथ वन्दना

मोहक महल मणिमाल मंडित सम्पदा षट् खण्ड की ।
हे शान्ति जिन तृण-सम-तजी ली शरण एक अखण्ड की ॥
पायो अखण्डानन्द दर्शन ज्ञान बीरज आपने ।
संसार पार उतारनी दी देशना प्रभु आपने ॥

१७. श्री कुन्थुनाथ वन्दना

मनहर मदन तन वरन सुवरन सुमन सुमन समान ही ।
धनधान्य पूरित सम्पदा अगणित कुबेर समान थी ॥
थी उरवंसी सी अंगनाएं संगनी संसार की ।
श्री कुन्थुजिन तृण-सम तजी ली राह भवदधि पार की ॥

१८ श्री अरनाथ वन्दना

हे चक्रधर जग जीतकर षट्खण्ड को निज वश किया ।
पर आतमा जिन नित्य एक अखण्ड तुम अपना लिया ॥
हे ज्ञानधन अरनाथ जिन धन-धान्य को ठुकरा दिया ।
विज्ञानघन आनन्दघन निज आतमा को पा लिया ॥

१९. श्री मल्लिनाथ वन्दना

हे दुपद-त्यागी मल्लिजिन नन-मल्ल का मर्दन किया ।
एकान्त पीड़ित जगत को अनेकान्त का दर्शन दिया ॥
तुमने बताया जगत को क्रमबद्ध है सब परिणमन ।
हे सर्वदर्शी सर्वज्ञानी नमन हो शत-शत नमन ॥

२०. श्री मुनिसुव्रत वन्दना

मुनिमनहरण श्री मुनीसुव्रत चतुष्पद परित्याग कर ।
निजपद विहारी हो गये तुम अपद पद परिहार कर ॥
पाया परमपद आपने निज आतमा पहिचान कर ।
निज आतमा को जानकर निज आतमा का ध्यान धर ॥

२१. श्री नमिनाथ वन्दना

निजपद विहारी धरमधारी धरममय धरमातमा ।
निज आतमा को साध पाया परमपद परमातमा ॥
हे यान-त्यागी नमी तेरी शरण मे मम आतमा ।
तूने बताया जगत को सब आतमा परमातमा ॥

२२. श्री नेमिनाथ वन्दना

आसन बिना आसन जमा गिरनार पर घनश्याम तन ।
सद्बोध पाया आपने जग को बताया नेमि जिन ॥
स्वाधीन है प्रत्येक जन स्वाधीन है प्रत्येक कन ।
पर द्रव्य से है पृथक् पर हर द्रव्य अपने मे मगन ॥

२३. श्री पार्श्वनाथ वन्दना

तुम हो अचेलक पार्श्वप्रभु वस्त्रादि सब परित्याग कर ।
तुम वीतरागी हो गये रागादिभाव निवार कर ॥

तुमने बताया जगत को प्रत्येक कण स्वाधीन है ।
कर्त्ता न धर्त्ता कोई है अणु अणु स्वयं में लीन है ॥

२४. श्री वीर वन्दना

हे पाणिपात्री वीर जिन जग को बताया आपने ।
जगजाल में अब तक फंसाया पुण्य एवं पाप ने ॥
पुण्य एवं पाप से है पार मग सुख-शान्ति का ।
यह धरम का है मरम यह विस्फोट आतम क्रान्ति का ॥
पुण्य-पाप से पार, निज आतम का धरम है ।
महिमा अपरंपार, परम अहिंसा है यही ॥

बैठ अकेला दो घड़ी

बैठ अकेला दो घड़ी, कभी तो प्रभु को ध्याया कर ।
मन मन्दिर में गाफिल, झाड़ू रोज लगाया कर ॥टेर॥
सोने में तो रात गुजारी, दिन भर करता पाप रहा ।
इस तरह बर्बाद तू प्राणी, होता अपने आप रहा ।
बिस्तर से उठ प्रेम से, सत्संग में तू जाया कर ॥१॥
बार-बार नर जन्म का पाना, बच्चों वाला खेल नहीं ।
जन्म-जन्म के शुभ कर्मों का, होता जब तक मेल नहीं ॥
नर तन पाने के लिये, उत्तम धर्म कमाया कर ॥२॥
पास तेरे है दुखिया कोई, तू ने मौज उड़ाई क्यों ।
भूखा प्यासा पड़ा पड़ोसी, तू ने रोटी खाई क्यों ॥
पहले सबसे पूछकर, भोजन फिर तू खाया कर ॥३॥
वीर जिनेश्वर जग हितकारी दया धर्म का ज्ञान दिया ।
अंधकार में पड़े जगत का, कर करुणा उद्धार किया ॥
वीर प्रभु का नाम तू, प्रातः समय उठ ध्याया कर ॥४॥

सामायिक कृति कर्म

[प्रथम पूर्व दिशा की ओर खड़े होकर कायोत्सर्ग (९ बार णमोकार मन्त्र पढना) करे फिर ॐ नमः सिद्धेभ्यः कहकर नमस्कार करके निम्न लिखित संकल्प करें]

हे भगवन्! मैं सहज ही अनन्त ज्ञान सुख स्वाभावी हूँ, परन्तु अपने ही बुद्धि के दोष से राग द्वेष करके आकुलित हुआ हूँ। अब अपने विभावों की निवृत्ति के अर्थ सामायिक करुँगा, सो मैं सामायिक के समय तक आरम्भ परिग्रह के विकल्पों को छोडता हूँ।

(कायोत्सर्ग करते हुए चारों दिशाओं मे आवर्त करे । आवर्त करते हुए मन में यह कहें " . " दिशा में जो अर्हंत साधु चैत्य चैत्यालय हों उन सब को मन वचन काय से नमस्कार हो। फिर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके पद्मासन या सुखासन से बैंठे)

—:भावना:—

नमूं नमूं आनन्दघन, है विराग विज्ञान।
वमूँ वमूँ भव पीर सब करु सुखामृत पान।१।

तन धन पुत्र मित्र परिवार, परिणति इनकी इनके लार।
मैं चाहूँ मो माफिक रहे, सोचो फिर कैसे सुख लहें।१।

तन धन गृह सुत किकर-नार, इनसे सुख जीवन भ्रम धार।
इनको दास न बन सुन भ्रात, कर्म उदै जीवन सुख सात।२।

हो न कबहुँ दुख वह सुख सार, इन्द्रिय भोग हैं प्रकट असार।
रक राव सब तृष्णागार, सो असार सब विधि संसार।३।

बन्धु मित्र जाने सुखकार, तेरो सुख तुझ माहि अपार।
सो भूल्यौ कीनो विधि बन्ध, तातैं विपदा को सम्बन्ध।४।

जो तू यह तन तज कर जाय, तेरो तन फिर नांहि कहाय।
ऐसे इस तन से तू भिन्न, तो न बिराने होंय अभिन्न।५।

खून पीव मल मूत्र मलीन, ऐसे तनसो का रति कीन।
तेरो तो शुचि ज्ञान शरीर, परम शान्ति अमृत रस सीर।६।

मन वच तन के चञ्चल होत, होत विचल यह आतम ज्योत।
सो ही विधि को आवन द्वार, तातैं चञ्चलता निरवार।७।

कर्म रुकै कारज बन आय, ताको भाई एक उपाय।
शुद्ध निजातम परिणति देख, यही कोटि शास्त्रनि को लेख।८।

जैसी रुकै विषय की चाह, शान्त होय सब तृष्णा दाह।
पूर्ववद्ध विधि होय अबन्ध, हो अनन्त सुख को सम्बन्ध।९।

तीन लोक के सब ही थान, उपज्यौ मर्यौ भयौ दुखखान ।
नाना विध इन्द्रिय सुख लह्यौ, तो भी टुक सन्तोष न गह्यौ।१०।

मिले मिलें सुरपति के भोग, कञ्चन कामिनि को संयोग।
विस्मय नहीं सुलभ सब जान, दुर्लभ है स्वातम सरधान।११।

नहीं राग नहीं द्वेष न मोह, न हो विविध कल्पन सन्दोह।
तत्वभासना केवल होय, सो ही धर्म सत्य सुख जोय।१२।

दोहा

हे स्वतन्त्र विज्ञान मय, समय सार अविकार।
मन विकल्प हर प्रकट कर, सहजानन्द प्रसार॥

(कायोत्सर्ग करें)

स्तवन

छप्पय–बन्दौं ज्ञायकभाव सनातन सहज सुखाकर।
जिस उपयोग प्रसाद हुए होंगे सुखसागर॥
बंदौ श्री वृषभादि वीर पर्यत जिनेश्वर।
भूत भविष्यत् विहरमान जिन मुनि तीर्थेश्वर॥

मुक्त विमुक्त मुनीन्द्र के बिम्ब भवन जिन धर्म कूं ।
नमूं शारदा स्वमति हित लहुँ सत्य शिवशर्म कूं ॥१॥

सीमन्धर जुगमन्धर बाहु सुबाहु जिनेश्वर।
इस विदेह के विहरमान शिवमार्ग दिवाकर॥
गौतम गुण धर पुष्प भूतवलि कुन्दकुन्दवर।
उमा भद्र अकलंक वीर इत्यादि ऋषीश्वर॥
जिन/प्रसाद अनुपम अमित देखा सुख का धाम है।
देव शास्त्र गुरु धर्म कूं बारम्बार प्रणाम है॥२॥

(कायोत्सर्ग करके 'ॐनम. सिद्धेभ्य:' इसका १०८ बार जाप करे)

आलोचना (प्रतिक्रमण)

पञ्च परम पद निज परम, पद चैतन्य स्वभाव।
नमूँ करुँ आलोचना, निज हित न हों विभाव॥१॥

तन को प्रभु आतम माना, नहिं भिन्न भिन्न पहिचाना ।
रागादिभाव निज माना, निज सहज स्वभाव भुलाना॥१॥

अब कछु पहिचान भई है, पर वासन नाहिं मिटी है ।
परिजन निज मानत हारा, आरम्भ परिग्रह धारा॥२॥

निज यश की चाह बढाई, परसौ हित दृष्टि बनाई।
हो जग में कौन सहाई, सब स्वारथ के हैं भाई॥३॥

विषयनि रचि पाप कमाया, थावर त्रस भी न बचाया॥
तन अहित घिनावन भाया, बहुविध अभक्ष्य भी खाया॥४॥

निशभोजन किया कराया, बिनछन जल पिया पिलाया ।
नहि रखा न्याय व्यवहारा, ईर्ष्यावश अहित विचारा॥५॥

परदोषदृष्टि की भारी, निज भूल न रंच विचारी ।
अघपूर्ण विकल्प अनता, कीने भ्रमवश भगवंता॥६॥

दृष्कृत मिथ्या हों स्वामी। फिंर नहिं हों अन्तर्यामी।
नहिं रंच विकल्प करुं मैं। नित सहजानन्द रहूँ मैं ॥७॥

दोहा

वीतराग सर्वज्ञ तुम, नित निज सहजानन्द।
ध्यान शरण गहि सहजे लखि, मेटूं भवदुख द्वन्द ॥ ७॥

(नाभिकमल, हृदयकमल और मस्तक मे कमल के आश्रय क्रमशः ३ कायोत्सर्ग करे)

क्षमा याचना (प्रत्याख्यान)

मो मन वच तन, योग सू जिनकूं, जो जो कष्ट भयौ है ।
सर्व क्षमों मुझकूं मम सब सौं समताभाव जग्यौ है॥
हम तुम सब आनन्दसदन पर यह क्या राग वन्यौ है।
क्षण सयोग में रागविरोध से निज-निज अहित कियौ है ॥१ ॥

निज निज कर्म उदयवश सबकी निज-निंज परिणति होती।
"दुःख दिया इसने अथवा मैं दुःख दऊं" मति थोती॥
अव सब भ्रम की बात भुला कर पावो निजातम ज्योति।
मैं भी सर्व विकल्प हटा कर पाऊँ सहज सुख ज्योति ॥२ ॥

(१ कायोत्सर्ग करे)

कामना

अचल अमल दृग ज्ञान सुख बल अनत के ईश।
परम धर्म नायक नमूं हस्त जोड धर शीश ॥१ ॥

चाहूॅं नंहि धन सपदा चाहूॅं नहिं सम्मान।
चाहूॅं नहि ससारसुख चाहूॅं आतम ज्ञान ॥२ ॥

चाहूॅं नहीं सम्पदा भूरि होवे॥ चाहूॅं नहीं पौत्र सुतादि होवे।
चाहूॅं नहीं क्लेश न पास आवे। चाहूॅं नहीं विष्टप कीर्ति गावे॥
चाहूॅं नहीं मान बडाई होवे। चाहूॅं नहीं लोकिक सौख्य होवे।
चाहूॅं नहीं इन्द्र प्रतीन्द्र होऊं। चाहूॅं नहीं राज्यविशाल जोऊं॥

चाहूँ नहीं चक्र गदादि पाऊ। चाहूँ नहीं सुन्दर नार पाऊ ।
चाहूँ नहीं पुण्य उपार्जना हो। चाहूँ नहीं वित्तप्रसारणा हो ॥३॥
चाहूँ नहीं लोक विशाल माने। चाहूँ नहीं बुद्धिविशिष्ट जाने ।
चाहूँ नहीं मर्त्य अमर्त्य ईशा। चाहूँ नही होऊ राजा फणीशा ॥४॥
चाहूँ नहीं अष्टक ऋद्धि होवे। चाहूँ नही सर्वप्रसिद्धि होवे ।
चाहूँ नहीं लोक वशी हो मेरे। चाहूँ नहीं लौकिक पाऊ फेरे ॥५॥
चाहूँ यही आतम शुद्ध होवे। चाहूँ यही राग न लेश होवे ।
चाहूँ यही ज्ञानविशिष्ट होऊ। चाहूँ यही कर्म विमुक्त होऊ ॥६॥
चाहता हूँ निज शुद्ध गुण नहि चाहूँ कछु और ।
चाह न हो चाहूँ यही मन हर वस निज ठौर ॥१॥

(कायोत्सर्ग करें)

समता (१ सामायिक)

पुण्य पाप फल, संपद विपदा, दोऊ अहित आकुलता।
राग विरोध बन्धु रिपु गृह धन कल्पन सारी जडता॥
मै चित्पिण्ड सहज सुखसागर अलख, नहीं मम ममता।
परपरिणति जैसी हो होओ मो उर प्रकटौ समता ॥१॥

समता बिन भव मांहि रुल्या हूँ समता बिन बन्धन था।
समता बिन भारी व्याकुल था समता बिन अशरण था।
अब जाना यह सर्व पदारथ निज निज भाव बसा है।
मै न किसी का कोई न मेरा यह ध्रुव सत्य लखा है ॥२॥

भोग न भोगन को हठ करते मैं भी न उनमे जाता।
मैं ज्ञानी ज्ञेय पदारथ बस इतना ही नाता॥
अब सब विकल्प दूर हटाये दूर हटी सब भ्रमता।
सहजानन्दस्वरूप में रमता नित्य भजूं मैं समता ॥३॥

(१ कायोत्सर्ग करके अपने विषय मे ध्यान करे और योगो के रोकने का यत्न रहे)

हे शुद्धस्वभावी आत्मन्! अनादि से अपने स्वभाव को भूल कर शरीर और विषय कषाय के परिणामों में अहबुद्धि की, ममता व राग द्वेष बढाये और अनन्तकाल दुःख सहा। अब भी चेतू तो भविष्यत् अनन्तकाल तक दुःख से रहित रहूँगा। सहजानन्दमय रहूँगा। अब मैं स्वभाव के उन्मुख रहूँगा क्योंकि मिथ्यात्व, काम, क्रोध मान, माया, लोभ के परिणामों मे मुझे लेश भी हित का विश्वास नहीं रहा क्योंकि ये विभाव विनाशीक और दुःखकारी है ।

आत्मकीर्तन (कायोत्सर्ग)

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक ॥
मैं वह हूँ जो हैं भगवान। जो मैं हूं वह हैं भगवान॥
अन्तर यही ऊपरी जान। वे विराग यहँ रागवितान॥ १ ॥
मम स्वरूप है सिद्ध समान । अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान॥
किन्तु आस वश खोया ज्ञान। बना भिखारी निपट अज्ञान ॥२ ॥
सुख दुख दाता कोई न आन। मोह राग रुष दुःख की खान।।
निज को निज पर को पर जान। फिर दुःख का नहिं लेश निदान ॥३ ॥
जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम। विष्णु बुद्ध हरि जिस के नाम॥
राग त्याग पहुँचूं निज धाम। आकुलता का फिर क्या काम ॥४ ॥
होता स्वयम् जगत परिणाम। मैं जग का करता क्या काम॥
दूर हटो पर कृत परिणाम। सहजानन्द रहूँ अभिराम ॥५ ॥

(१कायोत्सर्ग करके "शुद्ध चिद्रूपोऽहं" का १०८ बार या अनेको बार जाप्य करें)

प्रार्थना

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखम् धर्माय तस्मै नमः॥
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म मां पालय ॥१ ॥

(कायोत्सर्ग करे)

महिमा जिनवर-वचन की, नहीं वचन-बल होय।
भुज-बल सौं सागर अगम, तिरै न तीरहिं कोय ॥

आलोचना पाठ

(कवि जौंहरीलाल कृत)

दोहा- बदौ पाँचो परमगुरु, चौवीसो जिनराज ।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरण के काज ॥1॥

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी ।
तिनकी अब निर्वृत्ति काजा, तुम शरण लही जिनराजा ॥2॥

इक बे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित सहित जे जीवा ।
तिनकी नहि करुणा धारी, निरदई है घात विचारी ॥3॥
समरंभ समारंभ आरंभ, मनवचतन कीने प्रारभ ।
कृत कारित मोदन करिके, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै ॥4॥
शत आठ जु इमि भेदनते, अघ कीने पर छेदनते ।
तिनकी कहुँ कोलौं कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥5॥
विपरीत एकात विनयके, सशय अज्ञान कुनय के ।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहि जाय कहीने ॥6॥
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी ।
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुंगति मधि दोष उपायो ॥7॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनिता सौं दृग जोरी ।
आरम्भ परिग्रह भीनो, पनपाप जु या विधि कीनो ॥8॥
सपरस रसना घ्रानको, दृग कान विषय सेवनको ।
बहु कर्म किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥9॥
फल पञ्च उदबर खाये, मधु मांस मद्य चितचाहे ।
नहिं अष्ट मूलगुणधारी, विषयन सेये दुःखकारी ॥10॥
दुइबीस अभख जिनगाये, सो भी निशदिन भुञ्जाये ।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यौं त्यौं करि उदर भरायो ॥11॥

अनन्तानुजुबंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्त्याख्यानो ।
संज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु पोडश मुनिये ॥12॥

परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि तिवेद सजोग ।
पन-वीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥13॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोप लगाई ।
फिर जाग विपयवन धायो, नानाविधि विपफल खायो ॥14॥

आहार निहार विहारा, इनमें नहिं जतन विचारा ।
विन देखी धरी उठाई, विन शोधी वस्तु जु खाई ॥15॥

तव ही परमाद सतायो, वहुविधि विकलप उपजायो ।
कुछ सुधिवुधि नाहि रही हैं, मिथ्यामति छाय गयी हैं ॥16॥

मरयादा तुमढिग लीनी, ताहू मे दोप जु कीनी ।
भिन भिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविपै सब पइये ॥17॥

हा हा ! मैं दुष्ट अपराधी, त्रसजीवनराशि विराधी ।
थावरकी जतन न कीनी, उर मे करुना नहि लीनी ॥18॥

पृथिवी वहु खोद कराई, महलादिक जगा चिनाई ।
पुनि विन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो ॥19॥

हा हा ! मैं अदयाचारी, वहु हरितकाय जु विदारी ।
तामधि जीवन के खदा, हम खाये धरि आनन्दा ॥20॥

हा हा ! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई ।
तामधि जे जीव जु आये, ते हूं परलोक सिधाये ॥21॥

बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो ।
झाडू ले जागां बुहारी, चिउटी आदिक जीव विदारी ॥22॥

जल छानि जिवानी कीनी, सो हूँ पुनि डारि जु दीनी ।
नहिं जलथानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥23॥

जल मल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहु घात करायो ।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥24॥

अन्नादिक शोध कराई, ता में जु जीव निसराई ।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया ॥25॥

पुनि द्रव्य कमावन काजे, वहु आरम्भ हिसा साजे ।
किये तिसनावश अध भारी, करूना नहि रञ्च विचारी ॥26॥

इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवन्ता ।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई ॥27॥

ताको जु उदय अब आयो, नानाविधि मोहि सतायो ।
फल भुंज्जत जिय दुःख पावैं, वचतैं कैसे करि गावैं ॥28॥

तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी ।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है ॥29॥

जो गावपति इक होवे, सो भी दुखिया दुःख खोवे ।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुःख मेटहुं अन्तरजामी ॥30॥

द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो ।
अजन से किये अकामी, दुख मेट् यो अंतर जामी ॥31॥

मेरे अवगुण न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो ।
सब दोषरहित कर स्वामी, दुःख मेटहुं अन्तरजामी ॥32॥

इन्द्रादिक पदवी न चाहूं, विषयनि में नाहिं लुभाऊं ।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निजपद दीजे ॥33॥

दोहा-दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय ।
सब जीवन के सुख बढे, आनन्द मङ्गल होय ॥34॥

अनुभव माणिक पारखी, "जौंहरी" आप जिनंद ।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनंद ॥35॥ इति ॥

वज्रनाभि चक्रवर्ती की

वैराग्य भावना

दोहा-बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं ।
त्यों चक्री नृप सुख करें, धर्म विसारै नाहिं ॥1॥

इहविधि राज करै नरनायक, भोगै पुण्य विशाला ।
सुखसागर में रमत निरंतर, जात न जान्यो काला ॥
एक दिवस शुभ कर्म-संजोगे क्षेमंकर मुनि बंदे ।
देखे श्रीगुरुके पदपंकज, लोचन अलि आनन्दे ॥2॥

तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी ।
साधु-समीप विनय कर बैठ्यो, चरननमें दृष्टि दीनी ॥
गुरु उपदेश्यो धर्म-शिरोमणि, सुन राजा वैरागे ।
राजरमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे ॥3॥

मुनि-सूरज-कथनी-किरणावलि लगत भरम बुधि भागी ।
भव-तन-भोग-स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी ॥
इह संसार महावन भीतर, भरमत छोर न आवै ।
जामन मरन जरा दोंदाझै जीव महादुख पावै ॥4॥

कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी ।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, बध बंधन भयकारी ॥
सुरगति में परसंपति देखे, राग उदय दुख होई ।
मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्वसुखी नहिं कोई ॥5॥

कोई इष्ट वियोगी दीखे, कोई अनिष्ट संयोगी ।
कोई दीन-दरिद्री विलखे, कोई तन के रोगी ॥
किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई ।
किसही के दुख बाहिर दीखे, किसही उर दुचिताई ॥6॥

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै ।
खोटी संतति सो दुख उपजै, क्यो प्रानी सुख सोवै ॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहि सदा सुख साता ।
यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुखदाता ॥7॥

जो संसार विषै सुख होता, तीर्थङ्कर क्यो त्यागे ।
काहे को शिवसाधन करते, सजमसो अनुरागे ॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामे सार न कोई ।
सागर के जलसो शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई ॥8॥

सात कुधातुभरी मलमूतर, चर्म लपेटी सोहे ।
अंतर देखत या सम जग मे, और अपावन को है ॥
नव-मल-द्वार स्रवैं निशि-वासर, नाम लिये घिन आवै ।
व्याधि-उपाधि अनेक जहाँ तहाँ, कौन सुधी सुख पावै ॥9॥

पोषत तो दुख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै ।
दुर्जन-देह-स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावै ॥
राचन-जोग स्वरूप न याको विरचन-जोग सही है ।
यह तन पाय महातप कीजे यामे सार यही है ॥10॥

भोग बुरे भवरोग बढावैं, बैरी हैं जग जीके ।
बेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके ॥
वज्र-अग्नि विषसे विषधरसे, ये अधिके दुखदाई ।
धर्म-रतन के चोर चपल अति, दुर्गति-पंथ सहाई ॥11॥

मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै ।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कचन माने ॥
ज्यो ज्यो भोग सजोग मनोहर, मन-वाछित जन पावैं ।
तृष्णा नागिन त्यो-त्यों डंके, लहर जहरकी आवे ॥12॥

मैं चक्रीपद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे ।
तो भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥
राजसमाज महा अघ-कारण, बैर बढावन-हारा ।
वेश्या-सम लछमी अतिचंचल, याका कौन पत्यारा ॥13॥

मोह महा-रिपु बैर विचार्यो, जग-जिय संकट डारे ।
घर-कारागृह वनिता बेडी, परिजन जन रखवारे ॥
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी ।
येही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥14॥

छोडे चौदह रत्न नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी ।
कोटि अठारह घोड़े छोडे चौरासी लख हाथी ।
इत्यादिक संपति बहुतेरी जीरण-तृण-सम त्यागी ।
नीति विचार नियोगी सुतको, राज दियो बडभागी ॥15॥

होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे ।
श्रीगुरु चरण धरी जिन मुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज-धारी ।
ऐसी सपत्ति छोड बसे बन, तिन पद ढ़ोक हमारी ॥16॥

दोहा

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित पथ ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ ॥17॥

यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद् दूर वर्तिनी ।
यो नयत्याशु गव्यूतिं क्रोशार्धे किं स सीदति ॥४॥ इष्टोपदेश

संसारी जीव अपने शुद्ध भावों द्वारा जब समस्त कर्म जाल को काटकर जन्म मरण से मुक्त हो सकता है तब उसे स्वर्ग पालेना तो एक सरल बात है, जैसे जिस मनुष्य में दो कोस तक पैदल भार ले चलने की शक्ति हो तो उसे आधे कोस तक ले चलने में कोई विशेष कष्ट नहीं होता ।

ज्ञानरूपी जल से अग्नि क्रोध की शीतल करूँ ।
मान माया लोभ राग अरु द्वेष आदिक परिहरूँ ॥
वश में विषयों को करूँ अरु सब कषायों को हरूं ।
शुद्ध चित आनन्द से मैं ध्यान आतम का धरूं ॥6॥

जग के सब जीवों से अपना प्रेम हो अरु प्यार हो ।
अरु मेरी इस देह से संसार का उपकार हो ॥
ज्ञान का प्रचार हो अरु देश का उद्धार हो ।
प्रेम और आनन्द का व्यवहार घर घर बार हो ॥7॥

काल सर पर कालका खञ्जर लिए तैयार है ।
कौन बच सकता है इससे इसका गहरा वार है ॥
हाय ! जब हर हर कदम पर इस तरह से हार है ।
क्यो न फिर वह राह पकडूं सुखका जो भंडार है ॥8॥

प्रेम का मन्दिर बनाकर, ज्ञानदेवहि दू बिठा ।
शान्ति और आनन्द के घडियाल घन्टे दूं बजा ॥
अरु; पुजारी बन के दूं मैं, सबको आतम रस चखा ।
यह करुं उपदेश जग मे, कर भला होगा भला ॥ 9॥
आए कब वह शुभ घडी, जब बन बिहारी बन रहूं ।
शान्त होकर शान्ति गंगा का, मैं निर्मल जल पिऊं ॥
'ज्योती' से गुण ज्ञान की, अज्ञान सब जग का दहूं ।
हो सभी जग का भला यह बात मैं हरदम चहूं ॥ 10 ॥

पापाद् दुःखं धर्मात् सुखमिति सर्वजन-सुप्रसिद्ध-मिदम् ।
तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम् ॥ ८॥- आत्मानुशासन
अर्थ-पाप से दुःख और धर्म से सुख होता है, यह बात सब जनों में भली प्रकार प्रसिद्ध है । इसलिये जो भव्य प्राणी सुख की अभिलाषा करता है, उसे पाप को छोड़ कर निरन्तर धर्म का आचरण करना चाहिए ।

मेरी भावना

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी मे लीन रहो ॥1॥

विषयो की आशा नहिं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं ।
निज-परके हित साधन मे जो, निशिदिन तत्पर रहते हैं ॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, विना खेद जो करते हैं ।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं ॥2॥

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे ।
उनही जैसी चर्या मे यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ॥
नहीं सताऊँ किसी जीवको, झूँठ कभी नहीं कहा करूँ ।
पर धन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥3॥

अंहकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूँ ।
देख दूसरो की वढती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूँ ।
बने जहाँ तक इस जीवन मे, औरो का उपकार करूं ॥4॥

मैत्रीभाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे ।
दीन-दुखी जीवो पर मेरे, उरसे करुणा स्रोत वहे ॥
दुर्जन क्रूर-कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे ।
साम्यभाव रखूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥5॥

गुणीजनो को देख हृदय मे, मेरे प्रेम उमड़ आवे ।
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे ॥
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे ।
गुण ग्रहणका भाव रहे नित, दृष्टि न दोषो पर जावे ॥6॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे ।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे ॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे ।
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥7॥

होकर सुख में मगन न फूले, दुःख में कभी न घबरावे ।
पर्वत नदी-शमसान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावे ॥
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे ।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग मे, सहनशीलता दिखलावे ॥8॥

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे ।
बैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मङ्गल गावे ॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे ।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्मफल सब पावे ॥9॥

ईति-भीति व्यापे नहि जगमें, वृष्टि समय पर हुआ करे ।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ॥
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शाँति से जिया करे ।
परम अहिंसा धर्म जगत मे, फैल सर्वहित किया करे ॥10॥

फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे ।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहि, कोई मुख से कहा करे ॥
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे ।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख सङ्कट सहा करे ॥11॥

स्रोते को तुम जितना ही खोदोगे उतना ही अधिक पानी निकलेगा । ठीक इसी प्रकार तुम जितना ही अधिक सीखोगे, उतनी ही तुम्हारी विद्या मे वृद्धि होगी ।

सामायिक पाठ

[आचार्य अमितगति]

हे जिनेन्द्र ! सब जीवन से हो मैत्री भाव हमारे ।
दुःख दर्द पीड़ित प्राणिन पर करूँ दया हर बारे ॥
गुणधारी सत्पुरुषन पर हो हर्षित मन अधिकारे ।
नहीं प्रेम नहि द्वेष वहां विपरीत भाव जो धारे ॥1॥

हे जिनेन्द्र ! अब भिन्न करन को इस शरीर से आतम ।
जो अनन्त शक्तिधर सुखमय दोषरहित ज्ञानातम ॥
शक्ति प्रगट हो मेरे में अब तव प्रसाद परमातम ।
जैसे खडग म्यान से काढत अलग होत नित आतम ॥2॥

दुःख सुखो मे, शत्रु मित्र मे, हो समान मन मेरा ।
वन मन्दिर में, लाभ हानि मे, हो समता का डेरा॥
सर्व जगत के थावर जंगम चेतन जड उलझेरा ।
तिन मे ममत करूँ नहि कबहीं छोड़ू मेरा-तेरा ॥3॥

हे मुनीश ! तव ज्ञानमयी चरणो को हिये मे ध्याऊं ।
लीन रहे, वे कीलित होवे थिर उनको बिठलाऊँ ॥
छाया उनकी रहे सदा सब औगुण नष्ट कराऊँ ।
मोह-अँधेरा दूर करन को रत्न दीप सम भाऊँ ॥4॥

एकेन्द्री दोइन्द्री आदिक, पचेंद्री पर्यता ।
प्राणिन को प्रमादवश होके इत उत मे विचरता ॥
नाश छिन्न दुःखित कीये हो भले करे कर अन्ता ।
सो सब दुराचारकृत पाप दूर होहु भगवन्ता ॥5॥

रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग से उल्टा चल कर मैने ।
तज विवेक इन्द्रियवश होके अर कषाय आधीने ॥
सम्यक् व्रत चारित्र शुद्धि मे किया लोप हो मैंने ।
सो सब दुष्कृत पाप दूर हों शुद्ध किया मन मैंने ॥6॥

मन वच काय कषायन के वश जो कुछ पाप किया है ।
है संसार दुःख का कारण ऐसा जान लिया है ॥
निन्दा गर्हा आलोचन से ताको दूर किया है ।
चतुर वैद्य जिम मंत्र गुणो से विष संहार किया है ॥7॥

मति भ्रष्ट हो हे जिन ! मैंने जो अतिक्रम कर डाला ।
सुआचार कर्म में व्यक्तिक्रम अतिचार भी डाला ॥
हो प्रमाद आधीन कदाचित् अनाचार कर डाला ।
शुद्ध करण को इन दोषों के प्रतिक्रम कर्म सम्हाला ॥8॥

मन शुद्धि में हानिकारक जो विकार अतिक्रम है ।
शील स्वभाव उलंघन की मति सो जाना व्यतिक्रम है ॥
विषयों में वरतन होजाना अतिचार नहिं कम है ।
है स्वछन्द आसक्त प्रवर्तन अनाचार इक दम है ॥9॥

मात्रा पद अर वाक्यहीन या अर्थहीन वचनों को ।
कर प्रमाद बोला हो मैंने दोष सहित वचनों को ॥
क्षम्य ! क्षम्य ! जिनवाणि सरस्वति ! शोधो मम वचनों को ।
कृपा करो हे मात ! दीजिए पूर्ण ज्ञान रतनों को ॥10॥

बार बार बंदूँ जिन माते ! तू जीवन सुखदाई ।
मन चिन्तिन वस्तु को देवे चिन्तामणि सम भाई ॥
रत्नत्रय अर ज्ञान समाधि शुद्ध भाव इकताई ।
स्वात्मलाभ अर मोक्ष सुखों की सिद्धि दे जिन माई ॥11॥

सर्व साधु यति ऋषि और अनगार जिन्हें सुमरे हैं ।
चक्रधार अर इन्द्र देवगण जिनकी थुति करे हैं ॥
वेद पुराण शास्त्र पाठों में जिनका गान करे हैं ।
सो परम देव ! मम हृदय तिष्ठो तुझ में भाव भरे हैं ॥12॥
सबको देखन जानन वाला सुख स्वभाव सुखकारी ।
सब विकारि भावों से बाहर जिनमें हैं संसारी ॥

ध्यान द्वार अनुभव में आवे परमातम शुचिकारी ।
सो परमदेव मम हृदय तिष्ठो भाव तुझी में भारी ॥13॥

सकल दुःख संसार जाल के जिसने दूर किये हैं ।
लोकालोक पदारथ सारे युगपत देख लिये है ॥
जो मम भीतर राजत है मुनियो ने जान लिये हैं ।
सो परमदेव मम हृदय तिष्ठो सम-रस पान किये हैं ॥14॥

मोक्ष मार्ग त्रय रत्नमयी जिसका प्रगटावनहारा ।
जन्म मरण आदि दुःखों से सब दोषो से न्यारा ॥
नहिं शरीर नहि कलंक कोई लोकालोक निहारा ।
सो परमदेव मम हृदय तिष्ठो तुम बिन नहिं निस्तारा ॥15॥

जिनको सब ससारी जीवों ने अपना कर माना है ।
राग-द्वेष मोहादिक जिसके दोष नही जाना है ॥
इन्द्रिय रहित सदा अविनाशी ज्ञानमयी बाना है ।
सो परमदेव मम हृदय तिष्ठो करता कल्याना है ॥16॥

जिसका निर्मल ज्ञान जगत मे है व्यापक सुखदाई ।
सिद्ध बुद्ध सब कर्म बन्ध से रहित परम जिनराई ॥
जिसका ध्यान किये क्षण मे सब विकार मिट जाई ।
सो परमदेव मम हृदय तिष्ठो यही भावना भाई ॥17॥

कर्म मैल के दोष सकल नहि जिसे स्पर्श पाते हैं ।
जैसे सूरज की किरणो से तम समूह जाते है ॥
नित्य निरजन एक अनेकी इम मुनिगण ध्याते है ।
उस परमदेव को अपना लखकर हम शरणा आते हैं ॥18॥

जिसम तापकरण सूरज नहि ज्ञानमयी जगभासी ।
बोध भानु सुख शातिकारक शोभ रहा सुविकासी ॥
अपने आतम मे तिष्ठे है रहित सकल मल पासी ।
उस परमदेव को अपना लखकर शरणा ली भवत्रासी ॥19॥

जिसमे देखत ज्ञान दर्श से सकल जगत प्रतिभासें ।
भिन्न-भिन्न षट् द्रव्यमयी गुण पर्ययमय समतासे ॥
है शुद्ध शात शिवरूप अनादि जिन अनन्त फटिकामे ।
उस परमदेव को अपना लखकर शरणा ली सुखभासे ॥20॥

जिसने नाश किये मन्मथ अभिमान मूर्छा सारी ।
मन विपाद निद्रा भय शोक रति चिता दुखकारी ॥
जैसे वृक्ष समूह जलावत बन अग्नि भयकारी ।
उस परमदेव को अपना लखकर शरणा ली सुखकारी ॥21॥

है व्यवहार विधान शिला पृथ्वी तृण का सथारा ।
निश्चय से नहि आसन हैं ये इनमें नहि कुछ सारा ॥
इन्द्रिय विषय कषाय द्वेष से रहित जो आतम प्यारा ।
ज्ञानी जीवो ने गुण लखकर आसन उसे विचारा ॥22॥

नहि सथारा कारण हैगा निज समाधि का भाई ।
नहि लोगों से पूजा पाना सघ मेल सुखदाई ॥
रात दिवस निज आतम मे तू लीन रहो गुणगाई ।
छोड सकल भवरूप वासना निज मे कर इकताई ॥23॥

मम आतम बिन सकल पदारथ नहि मेरे होते हैं ।
मै भी नहि उनका होता हूँ नहि वे सुख बोते हैं ॥
ऐसा निश्चय जान छोड के बाहर निज टोते है ।
उन सम हम नित स्वस्थ रहे मुक्ति कर्म खोते हैं ॥24॥

निज आतम मे आतम देखो हे मन ! परम सुहाई ।
दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी परम शुद्ध सुखदाई ॥
चाहे जिसी ठिकाने पर हो, हो एकाग्र अधिकाई ।
जो साधु आपे में रहते सच समाधि उन पाई ॥25॥

मेरा आतम एक सदा अविनाशी गुण सागर है ।
निर्मल केवलज्ञानमयी सुख पूर्ण अमृतघट है ॥
और सकल जो मुझसे बाहर देहादिक सब पर है ।
नहीं नित्य निज कर्म उदय से बना यह नाटकघर है ॥26॥

जिसका कुछ भी ऐक्य नहीं है इस शरीर से भाई ।
तब फिर उसके कैसे होंगे नारी बेटा भाई ॥
मित्र शत्रु नहि कोई उसका, नहि संग साथी दाई ।
तन से चमडा दूर करे नहि छिद्र दीख पाई ॥27॥

पर के सयोगो मे पडं तनधारी बहु दुःख पाया ।
इस ससार महाबन भीतर कष्ट भोग अकुलाया ॥
मन वच काया से निश्चय कर सब से मोह छुडाया ।
अपने आतम की मुक्ति ने मन मे चाव बढाया ॥28॥

इस ससार महावन भीतर पटकन के जो कारण ।
सर्व विकल्प जाल रागादिक छोडो सर्व निवारण ॥
रे मन मेरे । देख आत्मा को भिन्न परम सुखकारण ।
लीन हो परमातम माही जो भव आताप निवारण ॥29॥

पूर्व काल में कर्मबन्ध जैसा आतम ने कीना ।
तैसा ही सुख दुख फल पावे होवे मरना जीना ॥
पर का दिया यदि सुख दुख को पावे बात सही ना ।
अपना किया निरर्थक होवे सौ होवे कबहूँ ना ॥30॥

अपने ही बाधे कर्मो के फल को जिय पाते हैं ।
कोई कोई को देता नाही ऋषिगण इम गाते है ।
कर विचार ऐसा दृढ मन से जो आतम ध्याते हैं ।
पर देता सुख दुख यह बुद्धि नहि चित मे लाते हैं ॥31॥

जो परमातम सर्व दोष से रहित भिन्न सब से है ।
अमितगति आचारज बंदे मन मे ध्यान करे है ॥
जो कोई नित ध्यावे मन मे अनुभव सार करे है ।
श्रेष्ठ मोक्ष लक्ष्मी को पाता आनन्द ज्ञान भरे है ॥32॥
इन बत्तीस पदन से जो कोई परमातम ध्याते है ।
मन को कर एकाग्र स्वात्म मे अव्यय पद पाते हैं ॥
सुख सागर वर्द्धन के कारण सत अनुभव लाते हैं।
सांची सामायिक को पाकर भवोदधि तर जाते है ॥

कषायै रञ्जितं चेतस्तत्त्वं नैवावगाहते ।
नीलीरक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौङ्कुमः ॥ १७ ॥

अर्थ–क्रोधादि कषायो से रंजायमान हुए मनुष्य का चित्त वस्तु के असली स्वरूप नहीं पहिचान सकता, जैसे कि नीले कपडे पर केसर का रंग नहीं चढ़ सकता ।

भावार्थ–वस्तु के यथार्थस्वरूप को जानने का यत्न करने से भी पहले हृदय से क्रोधादि कषायो को दूर करना चाहिए, तभी वस्तु का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा । जैसे अग्नि से जली हुई भूमि मे अंकुर नहीं उगता, वैसे ही कषाय से दग्ध हृदय में धर्मांकुर नहीं उगता । प्रत्येक पुरुष को निरन्तर कषायों को दूर करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करते रहना चाहिए, जिससे कि वे संसार सागर में डूबी हुई अपनी आत्मा का उद्धार कर सकें ।

स्वरूप–सम्बोधन

आराधना पाठ

मैं देव नित अरहत चाहूँ, सिद्धका सुमिरन करौं ।
मैं सुर गुरुमुनि तीनपद ये, साधुपद हिरदय धरौं ॥
मै धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना ।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु मे परपच ना ॥1॥

चौबीस श्रीजिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसै ।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, बदिते पातक नसै ॥
गिरनार शिखर समेद चाहूँ, चपापुरी पावापुरी ।
कैलाश श्रीजिनधाम चाहूँ, भजत भाजै भ्रमजुरी ॥2॥

नवतत्त्वका सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं ।
षट् द्रव्यगुन परजाय चाहूँ, ठीक जासो भय हरौं ॥
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव न चहूं कदा ।
तिहुकालकी मैं जाप चाहूँ, पाप नहि लागै कदा ॥3॥

सम्यक्त दर्शन ज्ञान चारित, सदा चाहूँ, भावसो ।
दशलक्षणी मै धर्म चाहूँ, महा हर्ष उछावसो ॥
सोलह जु कारन दुःख निवारण, सदा चाहूँ, प्रीतिसो ।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामगल रीतिसो ॥4॥

अनुयोग चारो सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाहसो ।
पाये धरमके चार, चाहूँ, अधिक चित्त उछावसो ॥
मै दान चारो सदा चाहूँ, भवन-वशि लाहो लहूँ ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्तमे ये ही गहूँ ॥5॥

भावना बारह जु भाऊं, भाव निरमल होत है ।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत है ॥
प्रतिमा दिगंबर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना ।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जह मोह ना ॥6॥

मैं साधुजनको संग चाहूँ, प्रीति तिन ही सों करों ।
मैं पर्वके उपवास चाहूँ, सब आरंभ परिहरों ॥
इस दुखद पंचमकाल माहीं, कुल श्रावक मैं लह्यो ।
अरु महाव्रत धरि सको नाहीं, निबल तन मैंने गह्यो ॥7॥

आराधना उत्तम सदा, चाहूँ, सुनो श्री जिनरायजी ।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना नाथ जी ॥
वसुकर्मनाश विकास, ज्ञान प्रकाश मोको कीजिये ।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये ॥8॥

मोक्षपद मिलता है, धीरे-धीरे

मन्दिर में जाऊं, दर्शन पाऊं,
श्रद्धा न बढता है धीरे धीरे ॥ १ ॥ मोक्षपद
प्रभु जी के चरणों में ध्यान लगाऊं,
भक्ती में दिन रात बिताऊं ।
लगन बढ़ती है धीरे धीरे ॥२॥ मोक्षपद
ईर्ष्याये छोडूं, समता धारू ।
कषाय नशती हैं, धीरे धीरे ॥३॥ मोक्षपद
ममता छोडूं, सत्संग पाऊं ।
ज्ञान बढता है, धीरे धीरे ॥४॥ मो क्षपद
इच्छाएं रोकूं, संयम धारूं,
तपस्या बढ़ती है, धीरे धीरे ॥५॥ मोक्षपद
परिग्रह त्यागूं, दीक्षा धारूं,
कर्म झरते हैं धीरे धीरे ॥६॥ मोक्षपद
सब जीवों से, क्षमा धार कर,
मैं शिवपुर जाऊं, धीरे धीरे ॥७॥ मोक्षपद

गुरुस्तुति

ते गुरु मेरे मन वसो, जे भव-जलधि-जिहाज ।
आप तिर पर तारहीं, ऐमे श्री ऋषिराज ॥ ते गुरु ॥1॥
मोह महारिपु जीतिके छाड्यो मव घरवार ।
होय दिगम्बर वन वसे आत्म शुद्ध विचार । ते गुरु ॥2॥
रोगउरग-विल विपु गिण्यो, भोग भुजङ्ग ममान ।
कदलीतरु ससार ह, त्यागो यह मव जान ॥ ते गुरु ॥3॥
रत्नत्रय निधि उर धरें, अरु निरग्रन्थ त्रिकाल ।
मार्यो काम पिशाच को, स्वामी परम दयाल ॥ ते गुरु ॥4॥
पञ्च महाव्रत आदरे, पॉचो ममिति-समेत ।
तीन गुपति पाले सदा अजरअमर पद हेत ॥ ते गुरु ॥ 5॥
धर्म धरें दसलक्षणी, भावें भावना सार ।
सहें परीपह वीसद्वै, चारित-रतन भडार ॥ ते गुरु ॥6॥
जेठ तप रवि आकरो, सूख सरवरनीर ।
शैल-शिखर मुनि तप तप, दाझें नगन शरीर ॥ ते गुरु ॥7॥
पावस रैन डरावनी, वरसे जलधर धार ।
तरुतल निवसें साहसी, वाजे झझाव्यार । ते गुरु ॥8॥
शीत पड कपि-मद गलैं, दाहे सव वनराय ।
ताल तरगनि के तटे, ठाडे ध्यान लगाय ॥ ते गुरु ॥ 9॥
इहि विधि दुद्धर तप तपैं, तीनो कालमझार ।
लागे सहज सरूप मे, तनसों ममत निवार ॥ ते गुरु ॥10॥
पूरव भोग न चितवें, आगम वॉछा नाहि ।
चहुँ गति के दु.खसौं डरें, सुरति लगी शिवमाहि ॥ ते गुरु ॥11॥
रङ्ग-महल मे पौढते, कोमल सेज विछाय ।
ते पच्छिम निशि भूमि मे, सौवे सवरि काय ॥ ते गुरु ॥12॥
गज चढि चलते गरवसौं, सेना सजि चतुरङ्ग ।
निरखि निरखि पग वे धरें, पालैं करुणा अङ्ग ॥ ते गुरु ॥13॥
वे गुरु चरण जहॉ धरे, जगमे तीरथ जेह ।
सो रज मम मस्तक चढो, 'भूधर' मागे येह ॥ ते गुरु ॥14॥

बारह भावना

1. अनित्यभावना

भोर की स्वर्णिम छटा सम क्षणिक सब सयोग है ।
पद्मपत्रों पर पडे जलबिन्दु सम सब भोग है ॥
सान्ध्य दिनकर लालिमा सम लालिमा है भाल की ।
सब पर पडी मनहूस छाया विकट काल कराल की ॥
अंजुली-जल सम जवानी क्षीण होती जा रही ।
प्रत्येक पल जर्जर जरा नजदीक आती जा रही ॥
काल की काली घटा प्रत्येक क्षण मडरा रही ।
किन्तु पल-पल विषय-तृष्णा तरुण होती जा रही ॥
दुःखमयी पर्याय क्षणभंगुर, सदा कैसे रहे ?
अमर है ध्रुव आतमा वह मृत्यु को कैसे वरे ?
ध्रुवधाम से जो विमुख वह पर्याय ही ससार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥
संयोग क्षणभंगुर सभी पर आतमा ध्रुवधाम है ।
पर्याय लयधर्मा परन्तु द्रव्य शाश्वत धाम है ॥
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥

2. अशरणभावना

छिद्रमय हो नाव डगमग चल रही मझधार मे ।
दुर्भाग्य से जो पड गई दुर्दैव के अधिकार मे ॥
तब शरण होगा कौन जब नाविक डुबा दे धार में ।
संयोग सब अशरण शरण कोई नहीं संसार में ॥
जिन्दगी इक पल कभी कोई बढा नही पायगा ।
रस रसायन सुत सुभट कोई बचा नहीं पाएगा ॥
सत्यार्थ है बस बात यह कुछ भी कहो व्यवहार मे ।
जीवन-मरण अशरण शरण कोई नहीं ससार में ॥

निज आत्मा निश्चय-शरण व्यवहार से परमातमा ।
जो खोजता पर की शरण वह आतमा बहिरातमा ॥
ध्रुवधाम से जो विमुख वह पर्याय ही ससार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥
सयोग हैं अशरण सभी निज आतमा ध्रुवधाम है ।
पर्याय व्ययधर्मा परन्तु, द्रव्य शाश्वत धाम है ॥
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥

३ ससारभावना

दुखमय निरर्थक मलिन जो सम्पूर्णतः निस्सार है ।
जगजालमय गति चार मे संसरण ही ससार है ॥
भ्रमरोगवश भव-भव भ्रमण ससार का आधार है ।
संयोगजा चिद्वृत्तियाँ ही वस्तुतः ससार है ॥
सयोग हो अनुकूल फिर भी सुख नही ससार मे ।
सयोग को संसार में सुख कहे बस व्यवहार मे ॥
दुख-द्वन्द है चिद्वृत्तिया सयोग ही जगफन्द है ।
निज आतमा बस एक ही आनन्द का रसकन्द है ॥
मंथन करे दिन-रात जल घृत हाथ मे आवे नहीं ।
रज-रेत पेले रात-दिन पर तेल ज्यो पावे नहीं ॥
सद्भाग्य बिन ज्यो सपदा मिलती नहीं व्यापार में ।
निज आतमा के भान बिन त्यो सुख नहीं संसार में ॥
ससार है पर्याय में निज आतमा ध्रुवधाम है ।
संसार संकटमय परन्तु आतमा सुखधाम है ॥
सुखधाम से जो विमुख वह पर्याय ही ससार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥

4. एकत्वभावना

आनन्द का रसकन्द सागर शान्ति का निज आतमा ।
सब द्रव्य जड पर ज्ञान का घनपिण्ड केवल आतमा ॥

जीवन-मरण सुख-दुख सभी भोगे अकेला आतमा ।
शिव-स्वर्ग नर्क-निगोद में जावे अकेला आतमा ॥
इस सत्य से अनभिज्ञ ही रहते सदा बहिरातमा ।
पहिचानते निजतत्व जो वे ही विवेकी आतमा ॥
निज आतमा को जानकर निज मे जमे जो आतमा ।
वे भव्यजन बन जायेंगे पर्याय मे परमातमा ॥
सत्यार्थ है बस बात यह कुछ भी कहो व्यवहार में ।
सयोग हैं सर्वत्र पर साथी नही ससार मे ॥
सयोग की आराधना ससार का आधार है ।
एकत्व की आराधना आराधना का सार है ॥
एकत्व ही शिव सत्य है सौन्दर्य है एकत्व में ।
स्वाधीनता सुख शान्ति का आवास है एकत्व मे ॥
एकत्व को पहिचानना ही भावना का सार है ।
एकत्व की आराधना आराधना का सार है ॥

5. अन्यत्वभावना

जिस देह में आतम रहे वह देह भी जब भिन्न है ।
तब क्या करें उनकी कथा जो क्षेत्र से भी अन्य हैं ॥
है भिन्न परिजन भिन्न पुरजन भिन्न ही धन-धाम है ।
हैं भिन्न भगिनी भिन्न जननी भिन्न ही प्रिय वाम है ॥
अनुज-अग्रज सुत-सुता प्रिय सुहृद जन सब भिन्न है ।
ये शुभ अशुभ संयोगजा चिद्वृत्तियाँ भी अन्य हैं ॥
स्वोन्मुख चिद्वृत्तियाँ भी आतमा से अन्य है ।
चैतन्यमय ध्रुव आतमा गुणभेद से भी भिन्न है ॥
गुणभेद से भी भिन्न है आनन्द का रसकन्द है ।
है संग्रहालय शक्तियो का ज्ञान का घनपिण्ड है ॥
वह साध्य है आराध्य है आराधना का सार है ।
ध्रुवधाम की आराधना का एक ही आधार है ॥

जो जानते इस सत्य को वे ही विवेकी धन्य हैं ।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है ॥
अन्यत्व को पहिचानना ही भावना का सार है ।
एकत्व की आराधना आराधना का सार है ॥

6. अशुचिभावना

जिस देह को निज जानकर नित रम रहा जिस देह मे ।
जिस देह को निज मानकर रच-पच रहा जिस देह में ॥
जिस देह में अनुराग है एकत्व है जिस देह मे ।
क्षण एक भी सोचा कभी क्या-क्या भरा उस देह मे ॥
क्या-क्या भरा उस देह मे अनुराग है जिस देह मे ।
उस देह का क्या रूप है आतम रहे जिस देह मे ॥
मलिन मल पल रुधिर कीकस वसा का आवास है ।
जडरूप है तन किन्तु इसमे चेतना का वास है ॥
चेतना का वास है दुर्गन्धमय इस देह मे ।
शुद्धातमा का वास है इस मलिन कारागेह मे ॥
इस देह के सयोग मे जो वस्तु पलभर आयगी ।
वह भी मलिन मल-मूत्र मय दुर्गन्ध मय हो जायेगी ॥
किन्तु रह इस देह मे निर्मल रहा जो आतमा ।
वह ज्ञेय हैं श्रद्धेय है बस ध्येय भी वह आतमा ॥
उस आतमा की साधना ही भावना का सार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥

7 आस्रवभावना

सयोगजा-चिद्वृत्तियॉ भ्रमकूप आस्रवरूप हैं ।
दुखरूप हैं दुखकरण है अशरण मलिन जडरूप हैं ॥
सयोग विरहित आतमा पावन शरण चिद्रूप है ।
भ्रमरोगहर सतोपकर सुखकरण है सुखरूप है ॥

इस भेद से अनभिज्ञता मद मोह मदिरा पान है ।
इस भेद को पहिचानना ही आत्मा का भान है ॥
इस भेद की अनभिज्ञता संसार का आधार है ।
इस भेद की नित भावना ही भवजलधि का पार है ॥
इस भेद से अनभिज्ञ ही रहते सदा बहिरातमा ।
जो जानते इस भेद को वे ही विवेकी आतमा ॥
यह जानकर पहिचानकर निज में जमे जो आतमा ।
वे भव्यजन बन जायेंगे पर्याय में परमातमा ॥
हैं हेय आस्रवभाव सब श्रद्धेय निज शुद्धातमा ।
प्रिय ध्येय निश्चय ज्ञेय केवल श्रेय निज शुद्धातमा ॥
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥

8. संवरभावना

देहदेवल में रहे पर देह से जो भिन्न है ।
है राग जिसमें किन्तु जो उस राग से भी अन्य है ॥
गुणभेद से भी भिन्न है पर्याय से भी पार है ।
जो साधकों की साधना का एक ही आधार है ॥
मैं हूँ वही शुद्धात्मा चैतन्य का मार्तण्ड हूँ ।
आनन्द का रसकन्द हूँ मैं ज्ञान का घनपिण्ड हूँ ॥
मैं ध्येय हूँ श्रद्धेय हूँ मैं ज्ञेय हूँ मैं ज्ञान हूँ ।
बस एक ज्ञायकभाव हूँ मैं मैं स्वयं भगवान हूँ ॥
यह जानना पहिचानना ही ज्ञान है श्रद्धान है ।
केवल स्वयं की साधना-आराधना ही ध्यान है ॥
यह ज्ञान यह श्रद्धान बस यह साधना आराधना ।
बस यही संवरतत्त्व है बस यही संवरभावना ॥
इस सत्य को पहिचानते वे ही विवेकी धन्य हैं ।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है ॥

शुद्धातमा को जानना ही भावना का सार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥

9. निर्जराभावना

शुद्धातमा की रुची सवर, साधना है निर्जरा ।
ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना है निर्जरा ॥
निर्मम दशा है निर्जरा निर्मल दशा है निर्जरा ।
निज आतमा की ओर बढ़ती भावना है निर्जरा ॥
वैराग्य जननी राग की विध्वंसनी है निर्जरा ।
है साधको की सगिनी आनन्दजननी निर्जरा ॥
तप-त्याग की सुख-शान्ति की विस्तारनी है निर्जरा ।
ससार पारावार पार उतारनी है निर्जरा ॥
निज आतमा के भान बिन है निर्जरा किस काम की ।
निज आतमा के ध्यान बिन है निर्जरा बस नाम की ॥
है बध की विध्वसनी आराधना ध्रुवधाम की ।
यह निर्जरा बस एक ही आराधको के काम की ॥
इस सत्य को पहिचानते वे ही विवेकी धन्य है ।
ध्रुवधाम के आराधको की बात ही कुछ अन्य है ॥
शुद्धातमा की साधना ही भावना का सार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥

10. लोकभावना

निज आतमा के भान बिन षट्द्रव्यमय इस लोक मे ।
भ्रमरोगवश भव-भव भ्रमण करता रहा त्रैलोक्य में ॥
करता रहा नित ससरण जगजालमय गति चार मे ।
समभाव बिन सुख रञ्च भी पाया नही ससार मे ॥
नर नर्क स्वर्ग निगोद मे परिभ्रमण ही ससार है ।
षटद्रव्यमय इस लोक मे बस आतमा ही सार है ॥

निज आतमा ही सार है स्वाधीन है सम्पूर्ण है ।
आराध्य है सत्यार्थ है परमार्थ है परिपूर्ण है ।।
निष्काम है निष्क्रोध है निर्मान है निर्मोह है ।
निर्द्वन्द्व है निर्दण्ड है निर्ग्रन्थ है निर्दोष है ॥
निर्मूढ है नीराग है आलोक है चिल्लोक है ।
जिसमें झलकते लोक सब वह आतमा ही लोक है ।।
निज आत्मा ही लोक है निज आत्मा ही सार है ।
आनन्दजननी भावना का एक ही आधार है ॥
यह जानना पहिचानना ही भावना का सार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥

11. बोधिदुर्लभ भावना

इन्द्रियो के भोग एव भोगने की भावना ।
हैं सुलभ सब दुर्लभ नही है इन सभी का पावना॥
है महादुर्लभ आत्मा को जानना पहिचानना ।
है महादुर्लभ आत्मा की साधना आराधना ॥
नर देह उत्तम देश पूरण आयु शुभ आजीविका ।
दुर्वासना की मंदता परिवार की अनुकूलता ॥
सत् सज्जनों की संगति सद्धर्म की आराधना ।
है उत्तरोत्तर महादुर्लभ आत्मा की साधना ॥
जब मैं स्वयं ही ज्ञेय हूँ जब मैं स्वय ही ज्ञान हूँ ।
जब मैं स्वयं ही ध्येय हूँ जब मैं स्वय ही ध्यान हूँ ॥
जब मैं स्वयं आराध्य हूँ जब मैं स्वय आराधना ।
जब मैं स्वयं ही साध्य हूँ जब मै स्वय ही साधना ॥
जब जानना पहिचानना-निज-साधना आराधना ।
ही बोधि हैं तो सुलभ ही है बोधि की आराधना ॥
निज तत्त्व को पहिचानना ही भावना का सार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥

12 धर्मभावना

निज आतमा को जानना पहिचानना ही धर्म है ।
निज आतमा की साधना आराधना ही धर्म है ॥
शुद्धातमा की साधना आराधना का मर्म है ।
निज आतमा की ओर बढती भावना ही धर्म है ॥
कामधेनु कल्पतरु सकटहरण बस नाम के ।
रतन चिन्तामणी भी हैं चाह बिन किस काम के ॥
भोगसामग्री मिले अनिवार्य है पर याचना ।
है व्यर्थ ही इन कल्पतरू चिन्तामणी की चाहना ॥
धर्म ही वह कल्पतरु, है नही जिसमे याचना ।
धर्म ही चिन्तामणी, है नही जिसमे चाहना ॥
धर्मतरु से याचना बिन पूर्ण होती कामना ।
धर्म चिन्तामणी है शुद्धातमा की साधना ॥
शुद्धातमा की साधना अध्यात्म का आधार है ।
शुद्धातमा की भावना ही भावना का सार है ॥
वैराग्यजननी भावना का एक ही आधार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥

मूलं संसार दु.खस्य, देह एवात्मधीस्ततः ।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्तर्बहिरव्यापृतेन्द्रिय. ॥ १५॥

समाधि-शतक

अन्वयार्थ-(देहे आत्मधी: एव संसार: दु.खस्य मूल) शरीर मे आत्मबुद्धि का होना ही संसार के दु:खों का मूल कारण है (तत. एनां त्यक्त्वा बहि: अव्यापृतेन्द्रिय. अन्त: प्रविशेत्) इसलिए शरीर में आत्मबुद्धि को छोडकर और इन्द्रियों को बाह्य विषयो से रोककर अन्तरग में प्रवेश करना चाहिए ।

भावार्थ-जितने भी संसार के प्रपच हैं वे सब इस शरीर के साथ है, जब तक जीव इस शरीर को अपना मानता रहेगा तब तक वह संसार के दु:खदायी जजाल से कभी नहीं छूट सकता। इसी कारण इस अपूर्व ग्रंथ में ग्रन्थकार ने समस्त दु:खों की जड जो शरीर मे आत्मबुद्धि का होना है, उसके छुडाने के लिए ही अधिक जोर दिया है ।

भक्तामर स्तोत्र

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा ।
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानं ।
सम्यक्प्रणम्य जिन-पादयुगं युगादा
बालम्बनं भव-जले पततां जनानाम् ॥ १ ॥

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय तत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथै : ।
स्त्रोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्तहरैरुदारैः ।
स्त्रोष्येकिलाऽहमपितं प्रथमं जिनेंद्रम् ॥ २ ॥

बुद्धया विनापि विबुधार्चितपादपीठ
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥ ३ ॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र, शशांककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया ।
कल्पान्तकाल पवनोद्धतनक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥ ४ ॥

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश
कर्तु स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृतः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं ॥
नाभ्येतिं किंम निज शिशोः परिपालनार्थम् ॥ ५ ॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किलमधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिकानिकरैकहेतु ॥ ६ ॥

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रांतलोक मलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥ ७ ॥

मत्वेति नाथ ! तवसंस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दु : ॥ ८ ॥

आस्तां तवस्तवन-मस्त-समस्त-दोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्त्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥ ९ ॥

नात्यद्भुतंभुवनभूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा-
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥ १० ॥

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष विलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशि कर द्युति दुग्ध सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ॥ ११ ॥

यैः शान्तराग रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रि भुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥

वक्त्रं क्वते सुरनरोरग नेत्रहारि
निः शेष निर्जित जगत्त्रित योपमानम्।
बिम्बंकलङ्क मलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥

सम्पूर्ण मण्डल शशांक कलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति।
ये संश्रितास्त्रि जगदीश्वर नाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टं ॥१४॥
चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्द-राद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

निर्धुम् वर्त्तिरप वर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगतत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीप्रोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदरनिरुद्ध महाप्रभावः
सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्ज मनल्पकान्ति
विद्योतय ज्जगदपूर्वशशांक बिम्बं॥१८॥

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमः सु नाथ।
निष्पन्न शालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जल भारनम्रैः. ॥१९॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैव तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेज. स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्व
नैव तु काचशकले किरणाकुलेऽपि॥२०॥

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्य
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि॥२१॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वादिशो दधति भानि सहस्त्ररश्मि
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्॥२२॥

त्वामामनन्तिमुनय. परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पथाः॥२३॥

त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनंत मनङ्गकेतुम्
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूप ममलं प्रवदन्ति सन्तः॥२४॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शङ्ककरत्वात्।
धाताऽसि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्-
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि॥२५॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश!
दोषैरुपात्तविबुधाश्रयजातगर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥२७॥

उच्चैरशोकतरुसंश्रित मुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमो वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति॥२८॥

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं
तुङ्गोदयाद्रि शिरसीव सहेस्त्ररश्मेः॥२९॥

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभम्,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिझरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्॥३०॥

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककांत-
मुच्चः स्थितं स्थगित भानुकरप्रतापम्।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभम्
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्॥३१॥

गम्भीरतार रवपूरितदिग्विभाग-
स्त्रैलोक्यलोकशुभसगम भूतिदक्षः।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी॥३२॥

मन्दार सुन्दरनमेरुसुपारिजात-
सन्तानकादिकुसुमोत्कर वृष्टिरुद्धा।
गन्धोदबिन्दु शुभमन्दमरुत्प्रपाता
दिव्यादिवः पतति ते वचसां ततिर्वा॥३३॥

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर निरन्तरभूरिसंख्या
दीप्त्याजयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम्॥३४॥

स्वर्गापवर्गगममार्ग विमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्त्वकथनैक पटुस्त्रिलोक्या।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणैप्रयोज्य॥३५॥

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती,
पर्युल्लषसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

इत्थं यथा तव विभूतरभूजिनेन्द्र
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभादिनकृतः प्रहतांधकारा
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि॥३७॥

श्च्योतन्मदाविल-विलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमर नाद-विवृद्धकोपम्।
ऐरावताभ- मिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्॥३८॥

भिन्नेभकुम्भगल दुज्वल शोणिताक्त-
मुक्ताफलःप्रकर-भूषित भूमि भागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगांचलसंश्रितं ते॥३९॥

कल्पान्त कालपवनोद्धतवन्हिकल्पं,
दावानलंज्वलितमुज्वल मुत्स्फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तम्,
त्वन्नामकीर्त्तन जलं शमयत्यशेषम्॥४०॥

रक्तेक्षणं समद-कोकिल कण्ठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फण मापतन्तम्।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशंकः
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्यपुंसः॥४१॥

वल्गत्तुरंग गजगर्जित भीमनाद-
माजौबलं बलवतामपिभूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धम् ,
त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥ ४२ ॥

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतार तरणातुर योधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जय जेयपक्षा-
स्त्वत्पाद पंकजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥ ४३ ॥

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठ भयदोल्वणवाड़वाग्नौ
रंगत्तरंग शिखर-स्थित-यानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥ ४४ ॥

उद्भूत भीषणजलोदरभारभुग्ना :
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः
त्वत्पादपंकज रजोऽमृतदिग्धदेहा
मर्त्या भवन्ति मकर ध्वज तुल्य रूपाः ॥ ४५ ॥

आयाद कण्ठमुरूशृंखलविष्टितांगा,
गांढ़ वृहन्निगडकोटि निघृष्टजङ्घा : ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्त :
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥ ४६ ॥

मत्तद्विपेन्द्र मृगराज दवानलाहि-
संग्रामवारिधि महोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते॥ ४७ ॥

स्तोत्रस्त्रजं तवजिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया विविध वर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्त्रं
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मी : ॥ ४८ ॥

आरती पंच परमेष्ठी

(द्यानत रायजी)

इह विधि मंगल आरती कीजे, पंच परमपद भज सुख लीजे । टेक ।
पहली आरती श्री जिनराजा, भवदधि पार उतारा जिहाजा । इह. ।
दूसरी आरती सिद्धन केरी, सुमरन करत मिटे भव फेरी । इह. ।
तीसरी आरती सूर मुनिन्दा, जनम मरण दुःख दूर करिन्दा । इह. ।
चौथी आरती श्री उवज्झाया, दर्शनदेखत पाप पलाया । इह. ।
पांचवीं आरती साधु तिहारी, कुमति विनाशन शिव अधिकारी । इह. ।
छट्ठी ग्यारह प्रतिमा धारी, श्रावक वन्दौ आनन्दकारी । इह. ।
सातवींआरती श्री जिनवाणी, 'द्यानत' स्वर्ग मुक्ति सुखदानी । इह. ।
संध्या करके आरती कीजे, अपनो जनम सफल कर लीजे । इह. ।
जो कोई आरती करे करावे, सो नर नारि अमर पद पावे । इह ।
सोने का दीप कपूर की बाती, जगमग ज्योति जरे सारी राती । इह. ।

श्री महावीर स्वामी की आरती

जय महावीर प्रभो स्वामी जय महावीर प्रभो।
कुण्डलपुर अवतारी, त्रिशलानन्द विभो।
ओ जय महावीर प्रभो॥

सिद्धारथ घर जन्मे, वैभव था भारी, स्वामी वैभव था भारी।
बाल ब्रह्मचारी व्रत पाल्यो तपधारी॥१। ओम जय

आतम ज्ञान विरागी, सम दृष्टि धारी।
माया मोह विनाशक, ज्ञान ज्योति जारी॥२। ओम जय .

जग में पाठ अहिंसा आपही विस्तार्‌यो।
हिंसा पाप मिटा कर सुधर्म परिचार्‌यो॥३। ओम जय . .

यहि विधि चाँदनपुर में अतिशय दरशायौ।
ग्वाल मनोरथ पुर्‌यो दूध गाय पायो। ४। ओम जय

अमरचन्द को सपना, तुमने प्रभु दीना।
मन्दिर तीन शिखर का, निर्मित है कीना। ५। ओम जय . .

जयपुर नृप भी तेरे, अतिशय के सेवी।
एक ग्राम तिन दीनों सेवा हित यह भी। ६। ओम जय . .

जो कोई तेरे दर पर, इच्छा कर आवे।
मनवांछित फल पावै संकट मिट जावे। ७। ओम जय . . . .

निशदिन प्रभु मन्दिर में जग मग ज्योति जरे।
सेवक प्रभु चरणों में आनन्द मोद भरे। ८।
ओम जय महावीर प्रभो॥

श्री शांतिनाथ भगवान की आरती

ॐ जय शांतिनाथ स्वामी । प्रभु शांतिनाथ स्वामी ।
मन वच तन से वन्दों, जय अन्तरयामी ॥ ॐ जय । १ ॥

गर्भ जन्म जब हुआ आपका, तीन लोक हर्षे-स्वामी. . ... ।
इन्द्र कियो अभिषेक शिखर पर शिव मग के स्वामी ॥ ॐ जय ॥ २ ॥

पंचम चक्री भये आप ही षट्खण्ड के स्वामी-प्रभु षट् .... ।
राज्य वैभव को त्यागा २, कामदेव नामी ॥ ॐ जय. । ३ ॥

अतुल वैभव को तृणवत् त्यागा, हुये कर्म नाशी-स्वामी .. ।
भये आप तीर्थंकर २, शिवरमणी स्वामी । ॐ जय. ॥ ४ ॥

वीर सिन्धु को नमस्कार कर, तव आरती प्रभु स्वामी।
सूरज शिवपुर पावो २, महा सुक्खधामी । ॐ जय ॥ ५ ॥

श्री पार्श्वनाथ की आरती

ॐ जय पारस देवा प्रभु जय पारस देवा ।
सुरनर मुनिजन तव चरननकी करते नित सेवा ॥ टेक ॥
पौष बदी ग्यारस काशी में आनन्द अति भारी ।
अश्वसेन घर वामा माता के उर लीनो अवतारी ॥ ॐ जय ॥ १ ॥

श्याम वरण नव हस्थ काय पग उरग लखन सोहै ।
सुरकृत अति अनुपम पट भूषण सबका मन मौहे ॥ ॐ जय ॥ २ ॥

जलते देख नाग नागिनी को मंत्र नवकार दिया ।
हरा कमठ का मान ज्ञान का भानु प्रकाश किया ॥ ॐ जय ॥ ३ ॥

मात-पिता तुम स्वामी मेरे आस करूं किसकी ।
तुम बिन दूजा और न कोई शरण कहूँ जिसकी ॥ ॐ जय ४ ॥

तुम परमातम तुम अध्यातम तुम अन्तरयामी ।
स्वर्ग मोक्ष पदवी के दाता त्रिभुवन के स्वामी ॥ ॐजय ५ ॥

दीनबन्धु दुःखहरण जिनेश्वर तुम ही हो मेरे ।
दो शिवपुर का वास दास हम द्वार खडे तेरे ॥ ॐ जय ॥ ६ ॥

विषय विकार मिटाओ मन का अर्ज सुनो जी दाता।
'जियालाल' कर जोड प्रभु के चरणो चित लाता॥ ॐ जय ॥७॥

श्री पार्श्वनाथ भगवान की आरती

जय पारस जय पारस जय पारस देवा ॥टेक॥
माता तुम्हारी वामा देवी, पिता अश्व देवा॥

काशीजी मे जन्म लिया था हो देवो के देवा।
आप तेइसवे हो तीर्थकर, भक्तो को सुख देवा॥

पाचो पाप मिटाकर हमरे, शरण देवो जिनदेवा।
दूजा और न कोई दीखैं, जो पार लगावे खेवा।

नवयुवक मंडल वना रहे जो करे आपकी सेवा।
हम भी शरण तिहारी आये, हाथ जोडकर शीश नवाए।
हमे भी दो प्रभु भक्ति का मेवा ॥
जय पारस, जय पारस, जय पारस देवा॥

कीचड पर बैठा है जल
मत उथल
घट भर और चल

भगवान पार्श्वनाथ की स्तुतिं

तुम से लागी लगन, ले लो अपनी शरण।
पारस प्यारा, मेटो मेटो जी संकट हमारा॥ टेर॥
निशदिन , तुमको जपूं पर से नेहा तजूं।
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा॥१॥ मेटो, मेटो॥

अश्वसेन के राजदुलारे, वामादेवी के सुत प्राण प्यारे।
सबसे नेहा तोड़ा जग से मुँह को मोड़ा संयम धारा ॥२॥ मेटो, मेटो ॥

इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये
आशा पूरो सदा, दुःख नहीं पावे कदा, सेवक थारा ॥३॥ मेटो मेटो॥

जग के दुःख की तो परवाह नहीं है, स्वर्ग सुख की भी चाह नहीं है।
मेटो जामन-मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा॥४॥ मेटो मेटो॥

लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊं जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊं।
'पंकज' व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया लागे खारा ॥५॥ मेटो मेटो॥

श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र (भाषा)

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीशं, शतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाय शीशं ।
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमों जोड़ि हाथं, नमो देवदेवं सदा पार्श्वनाथं ॥ १ ॥

गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावै, महा आग तें नाग-तें तू बचावैं ।
महावीरतें युद्ध में तू जितावैं, महा रोगतें बंधते तू छुड़ावै ॥ २ ॥

दुःखी दुःख हर्ता सुखी सुक्खकर्त्ता, सदा सेवकों को महानंद भर्ता ।
हरे यक्ष राक्षस भूतं पिशाचं, विषं डाकिनी विघ्न के भय अवाचं ॥ ३ ॥

दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने, अपुत्रीनको तू भले पुत्र कीने ।
महासंकटों से निकारै विधाता, सबै संपदा सर्वको देहि दाता ॥ ४ ॥

महाचोर को वज्रको भय निवारै, महापौन के पुञ्जतैं तू उबारै ।
महाक्रोध की अग्नि को मेघ-धारा, महालोभ-शैलेशको वज्रभारा ॥ ५ ॥

महामोह अंधेर को ज्ञान भानु, महाकर्मकातारको दौ प्रधानु ।
किये नागनागिन अधोलोकस्वामी, हर्‌यो मान तू दैत्यको हो अकामी ॥ ६ ॥

तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं, तुही दिव्य चिंतामणी काम एन ।
पशू नर्क के दुःखतैं तू छुड़ावै, महास्वर्ग मे मुक्ति मे तू बसावैं ॥ ७ ॥

करै लोह को हेमपाषाण नामी, रटै नाम सो क्यो न हो मोक्षगामी ।
करै सेव ताकी करें देव सेवा, सुनै वैन सोही लहैं ज्ञान मेवा ॥ ८ ॥

जपै जाप ताको नहीं पाप लागै, धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै ।
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे, तुम्हारी कृपातैं सरे काज मेरे ॥ ९ ॥

'दोहा-गणधर इन्द्र न कर सकै, तुम बिनती भगवान ।
'द्यानत' प्रीति निहारकैं, कीजे आप समान ॥ १० ॥

श्री आदिनाथ स्तुति

जय जय श्री आदि जिन, तुम हो तारन- तरण भवि जन प्यारे,
इन्द्र धरणेन्द्र श्रृति धर तुम्हारे ।
नाथ । सर्वार्थ सिद्धि से आये, माता मरुदेवी के सुत कहाये,
नाभि नृप के नन्दन, तुमको शत्-शत् वन्दन है हमारे
इन्द्र धरणेन्द्र श्रृति धर तुम्हारे ॥ १ ॥

कर्म युग के प्रथम तुम विधाता, लोकहित मार्ग के आदि ज्ञाता,
अंक-अक्षर-कला, तुमसे प्रगटे प्रभो, शिल्प सारे,
इन्द्र धरणेन्द्र श्रृति धर तुम्हारे ॥ २ ॥

देख नीलाजना के निधन को, राज छोड़ा, गये देव बन को,
योग साधा कठिन, कर्म-बन्धन गहन, तोड़ डारे,
इन्द्र धरणेन्द्र, श्रृति धर तुम्हारे ॥ ३ ॥

सिद्ध परमात्मपद पा गये तुम, शम्भू ब्रह्मा जिनेश्वर भये तुम,
सिर नवाते हुए, गुण गणगाते हुए, गणधर हारे,
इन्द्र धरणेन्द्र श्रुति धर तुम्हारे ॥ ४ ॥

नाथ ! अपनी चरण भक्ति दीजे, आत्मगुण-सिन्धु में मग्न कीजे,
छीजे आवागमन, शिवपुर में हो गमन, कर्म झारे,
इन्द्र धरणेन्द्र श्रुति धर तुम्हारे ॥ ५ ॥

श्री चन्द्र प्रभु स्त्रोत

दर्शन पाये तेरे, कष्ट भागे मेरे, आज सारे
आया श्री चन्द्र प्रभु तेरे द्वारे ॥
महासेन के राज दुलारे,
सुलक्षणा मां के सुत प्राण प्यारे,
तुमको सौ सौ नमन
अर्ज करिये श्रवण प्रभु हमारे
आया श्री चन्द्र प्रभु तेरे द्वारे

पोष ग्यारस बुदी जन्म पाया
देव इन्द्रों ने उत्सव मनाया,
गिर पर कीन्हा न्हवन
करके सौ सौ नमन आज सारे,
आया श्री चन्द्र प्रभु तेरे द्वारे

सोनागिर पर समोसरण आया
तेरी वाणी को सुन हर्ष पाया
सुन के वाणी तेरी
भागी भ्रान्ति मेरी, दर्द सारे
आया श्री चन्द्र प्रभु तेरे द्वारे . .

कर्म बेरी हमें नित सताये
लाख चौरासी में हमें भ्रमाये,
तुमको सौ सौ नमन
कर्म मेटो मेरे आज सारे
आया श्री चन्द्र प्रभु तेरे द्वारे ..

पूजा करने को आया पुजारी
पूजा स्वीकार करिये हमारी
अर्घ अर्पित तुम्हें
मोक्ष दीजे हमें नाथ हमारे
आया श्री चन्द्र प्रभु तेरे द्वारे

(1)

भजन (शरण कोई नहीं जग में)

शरण कोई नहीं जग मे शरण एक है जिनागम का
जो हो काज आतम का, तो शरण लो जिनागम का ॥
जहॉ निज तत्व की बाते वहां सब सत्य की जाते,
तहॉ शिव लोक की कथनी, तहा डर है नही यम का ॥ शरण ॥
इसी से कर्म नशते है इसी मे भजन भजते हैं
इसी से ध्यान धरते है बैरागी ध्यान आतम का ॥ शरण ॥
भला यह दाव पाया है जिनागम हाथ आया है,
अभागे दूर क्यो भागो, मिला अवसर समागम का ॥ शरण ॥

जो करना है सो अब करलो बुरे कामो से अब बचलो
कहे मुलतान सुनो भाई, भरोसा है न एक पल का ॥ शरण ॥

अरे सुधारक जगत की चिंता मत कर यार ।
तेरा मन ही जगत है पहले इसे सुधार ॥

(2)

नवकार मंत्र ही महामंत्र है

णमोकार मंत्र ही महामंत्र है
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं,
णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
नवकार मंत्र ही महामंत्र, निज पर का ज्ञान कराता है ।
नित जपो शुद्ध मन-वच-तन से, मन वांछित फल का दाता है ॥ १ ॥

पहिला पद श्री 'अरिहंताणं', यह आत्म ज्योति जगाता है ।
यह समोशरण की रचना का, भव्यो की याद दिलाता है ॥ २ ॥

नवकार मंत्र ही महामंत्र . . .
दूजा पद श्री 'सिद्धाणं', यह आत्म शक्ति बढ़ाता है ।
इसमें मन होता है निर्मल, अनुभव का ज्ञान कराता है ॥ ३ ॥
नवकार मंत्र ही महामंत्र . .
तीजा पद श्री 'आइरियाणं' दीक्षा के भाव जगाता है ।
दुःख से छुटकारा शीघ्र मिले, जिन मत का ज्ञान बढ़ाता है ॥ ४ ॥

नवकार मंत्र ही महामंत्र . . .
चौथा पद श्री 'उवज्झायाणं' यह जैन धर्म चमकाता है ।
कर्माश्रव को ढीला करता, यह सम्यक् ज्ञान कराता है ॥ ५ ॥

नवकार मंत्र ही महामंत्र . .
पंचम पद श्री 'सव्वसाहूणं', यह जैन तत्व सिखलाता है ।
दिलवाता है यह ऊंचा पद, संकट से शीघ्र बचाता है ॥ ६ ॥

नवकार मंत्र ही महामंत्र . .
तुम जपो भविक-जन महामंत्र, अनुपम वैराग्य बढ़ाता है ।
नित श्रद्धा व मन से जपने से, यह मन को शांत बनाता है ॥ ७ ॥
नवकार मंत्र ही महामंत्र . .

देह जीव को एक गिने बस, इससे तू हैरान रे॥ ना जाने किस .

शुभ को शुद्ध मान कर प्राणी भ्रमा चतुर्गति मांही रे,
कभी नरक में हुआ नारकी, कभी स्वर्ग में देव रे॥ ना जाने किस

कभी गया तिर्यंच गति में, कभी मनुष्य पर्याय रे।
चौरासी का स्वांग धरे रे, किया न भेद विज्ञान रे॥ ना जाने किस

भारी भूल हुई अब चेतो, सतगुरू समझाय रे।
यह अवसर मत चुके रे भाई, बात गुरु की मान रे॥ ना जाने किस
सत् को समझो, सम्यक् धरलो, होजा जग से पार रे॥
इससे सुन्दर और न कोई हित साधन का द्वार रे।
ना जाने किस स्वांस में भैया मिल जावे भगवान रे,
हो जावे कल्याण रे॥ ४ ॥

(5)

मेरी कामना

बस एक यही मेरी कामना तेरे चरणों में मैं झुका रहूं।
जो भला किसी का न कर सकूं तो बुरा किसी का न मैं करूँ॥
मेरे अंग अंग को रंग दे, मुझे अपनी भक्ति का रंग दे।
तेरी भक्ति हो मेरी जिन्दगी, कभी इससे मैं न जुदा रहूं॥
तेरे भक्तों का मेरा साथ हो, उनका ही सर पर हाथ हो।
तेरे नाम का अमृत सदा, तेरे भक्तों से मैं पिया करूँ॥
मुझे अपना दुःख तिल भर लगे, और औरों का पर्वत लगे।
मेरे ईश अब दे तू वर मुझे, कि मैं हर किसी की दुआ करूँ॥
न हो दुश्मनों से कोई गिला, करूँ मैं बदी की जगह भला।
मेरे मुख से निकले तेरी सदा, कोई चाहे कष्ट हजार दे॥
मेरी वासनाओं तो तोड दे, मेरे मन को ऐसा तू मोड दे।
विषयों में फँसना मैं छोड़ दूँ और तेरा नाम जपा करूँ॥ ५ ॥ .

(6)

भजन भगवन समय हो ऐसा

भगवन समय हो ऐसा, जब प्राण तन से निकले,
समता का मन्त्र जपते मम प्राण तन से निकले,
नवकार जपते जपते प्राणतन से निकले। भगवन समय हो ऐसा

ये क्रोध मान माया अरू लोभ जो समाया,
चारो कषाय छूटे, जब प्राण तन से निकले॥ भगवन समय हो ऐसा

आठों ये दुःख घनेरे, रहते हैं मुझको घेरे,
इनसे मैं मुक्त होऊ जब प्राण तन से निकले॥ भगवन समय हो ऐसा
होवे मरण समाधि, व्यापे न कोई व्याधि,
अन्तर मे ध्यान तेरा, जब प्राण तन से निकले॥ भगवान समय हो ऐसा

कर जोड अरज मेरी, काटो करम की बेडी,
सम्यत्व होवे पैदा, जब प्राण तन से निकले। भगवान समय हो ऐसा
नवकार जपते जपते, मम प्राण तन से निकले। भगवान समय हो ऐसा ॥ ६ ॥

(7)

भजन मैं कब आतम ध्याऊँ ।

जगत गुरू मैं कब आतम ध्याऊँ।
जगत गुरू कब निज आतम ध्याऊँ॥
नग्न दिगम्बर मुद्रा धरिके, कब निज आतम ध्याऊँ॥

ऐसी लब्धि होय कब मोकू, जो वांछित को पाऊं।
कब गृह त्याग होऊं बनवासी परम पुरुष लो लाउ।
रहू अडोल, जोड पदमासन करम कलक खपाऊ॥

केवल ज्ञान प्रगट कर अपनो लोकालोक लखाऊ।
जन्म जरा दुख देत जलाजली हो कब सिद्ध कहाऊ॥

सुख अनन्त बिलसूं तिहं थानक काल अनन्त गमाऊं।
मानसिंह महिमा निज प्रगटे, बहुरि न भव में आऊं ॥

(८)

यह संसार असार रे

है यह संसार असार रे, तू क्यों इसमें है रमता।
दुनियाँ है धोके की टट्टी, अन्त समय मिट्टी की मिट्टी।
आंखन में तेरे बंधी है पट्टी, डूब रहा मझधार रे॥
धरता तू क्यों नहीं समता ॥१ ॥

बालपना लड़कन संग खोया, खेलकूद में कुछ नहीं जोया।
यौवन में नारी संग मोह्या, जाए अवस्था खार रे॥
अजहूं मूरख नहीं नमता ॥२ ॥

देव गति में भोग समाया, नर्क काल पीड़ा में गमाया॥
पशु गति में पाप कमाया, कौन गति सुख सार रे॥
जप तप में क्यों नहीं जमता ॥३ ॥

आतम अनुभव कर तू भाई, केवल ज्ञान प्रगट हो जाई।
लगे न फिर कर्मत की काई , नानू शिवपद धार रे॥
तू छोड जगत की ममता ॥४ ॥

(९)

मेरे प्रभु तू मुझको बता

मेरे प्रभू तू मुझको बता तेरे सिवा मैं क्या करूं ।
तेरी शरण को छोड़कर जगकी शरण को क्या करूं ॥
कलियो मे बस रहे हो तुम, फूलो मे खिल रहे हो तुम ।
मेरे ही मन मे आ बसो, मन्दिर मे जाकर क्या करू ॥
चन्द्रमा बन के आप ही, तारो मे जगमगा रहे ।
तेरी चमक के सामने, दीपक जला के क्या करूँ ॥

सारी उमर खतम हुई, तेरी निगाहे न फिरी ।
कर्मो के फल को भोगता, कैसे बसर किया करूं ॥
वेकल हूं नाथ रात दिन, चैन नहीं है आप बिन ।
हरदम चलायमान मन, इसका उपाय क्या करूं ॥
शिक्षा यह मुझको दीजिये, अपनी शरण मे लीजिये ।
ऐसा प्रवन्ध कीजिये, सेवा मे ही रहा करू ॥

(10)

राज जग का मिले

राज जग का मिले धर्म जिनवर मिले ना तो क्या है।
साज सारे वजे, स्वर एक भी मिले ना तो क्या है॥ राज जग का मिले॥

जकड़ा हुआ हूँ मैं जंजीर से, पहुंचूंगा कैसे मैं मन्जिल पे।
अंग सारे खुले पांव मेरे चले ना तो क्या है॥ राज जग का मिले॥

मैं एक पंछी मजवूर हूं, डाली से विछड़ा हुआ नूर हूं।
पंख मेरे उड़े, किन्तु पिंजड़ा खुले ना तो क्या है॥ राज जग का मिले॥

संध्या सलोनी गुलावी खिली, इन्द्र धनुष की रंगावली।
हो विशाले प्रभा, नयन मेरे खुले ना तो क्या है॥ राज जग का मिले॥

(11)

आत्म भक्ति

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारण, तरण, ब्रह्म प्यारे, तेरी भक्ति मे क्षण जाये सारे ॥

ज्ञान से ज्ञान मे ज्ञान ही हो, कल्पनाओं का एक दम विलय हो,
भ्रान्ति का नाश हो, शान्ति का वास हो, ब्रह्मप्यारे ॥ तेरी भक्ति . .

सर्व गतियों में रह गति से न्यारे, सर्व भावो में रह उनसे न्यारे ।
सर्वगत, आत्मगत, रत न नाही विरत, ब्रह्म प्यारे ॥ तेरी भक्ति . .

सिद्धी जिनने भी अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई,
मेरे संकट हरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे ॥ तेरी भक्ति . . .

देह कर्मादि सब जग से न्यारे, गुण व पर्यय के भेदों से पारे ।
नित्य अन्तः अचल, गुप्त ज्ञायक अचल ब्रह्म प्यारे ॥ तेरी भक्ति .

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयो में नित श्रेय तू है
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे ॥ तेरी भक्ति . . .

(12)

तू पर में क्यों भरमाता है :

निज के गुण निज मे है चेतन, तू पर में क्यों भरमाता है
पर से दृष्टि को फेर जरा, मिल जाये गुणों का सिन्धु भरा,
निज में खोजा इसको जिसने, पाया है शिव पद को उसने,
शिव पद मिलता है निज गुण से, रे क्यो हमको विसराता है ॥ निज के . ...

जो गुण स्वभाव है सिद्धों में, वह ही तेरे मे छिपा हुआ,
हैं राग रहित अनुपम वे तो, तू राग रंग में रंगा हुआ
तज राग द्वेष, क्रोधादि सभी, इनके कारण दुःख पाता है ॥ निज के गुण . . .

कर्त्तापन से मुख मोड़ जरा मिथ्यात्व भाव को दूर भगा ॥
प्रगटा के दर्शन ज्ञान चरित्र, शुद्धातम को नित मान सगा ।
ये हैं सच्चे सुख के कारण, तू क्यो इनको विसराता है ।। निज के गुण .

पुरुषार्थ किया निज में जिसने केवल पद को पाया क्षण में,
सब तोड़ जगत के द्वन्द्व फन्द, सन्मति निज को ध्याओ निज में
हैं ज्ञाता, दृष्टा, भाव अचल, पर में रम क्यों दुःख पाता है ।
निज के गुण निज में है चेतन, तू पर में क्यों भरमाता है ।

(15)

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ

मैं हूं अपने मे स्वयं पूर्ण, पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं ।
मैं अरस, अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं ॥
मैं रंग-राग से भिन्न, भेद से भी मैं भिन्न निराला हूँ ।
मैं हूँअखण्ड चैतन्यपिण्ड निज रस में रमने वाला हूँ ।
मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता मुझ मे पर का कुछ काम नहीं ।
मैं मुझ में रहने वाला हूँ, पर में मेरा विश्राम नहीं ॥
मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक, पर-परणति से अप्रभावी हूँ ।
आत्मानुभूति से प्रास तंत्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ ॥

(14)

गुरू समान दाता नहीं कोई

गुरू समान दाता नहीं कोई अब मोहे निश्चय जान पड़ी ।
वीतराग प्रभू से माँगना तो भूल स्वय की होगी,
मुझ पर कृपा करेंगे कैसे उन्हें राग द्वेष का लेश नहीं,
पर मैं संसारी सदा मांगना, मेरी रही वृत्ति यह ही,
कैसे भी हो प्रास हो जाये जीवन की निधियां सारी,
देवी देवता बैठे स्वर्ग में कैसे विनती सुनेगे मेरी,
सत् गुरु का सानिध्य प्राप्त हो गया पार लगेगी नय्या मेरी ॥
जीवन के पथ में क्षण-क्षण मे कैसी मुश्किलें आती,
शूरवीर और पंडित की भी हो जाती लाचारी,
सूर्य चन्द्र भी दूर न कर सके मन में छाये अघ को
सत् गुरु मिल गये अब मौकू हर लेगें सब तम को
मिथ्यात्व ओर अंधकार मिटा उलझन को दूर करेंगें

शारीरिक हो या मानसिक व्याधि जड़ से दूर करेंगे ।
श्रद्धापूर्वक नमन मैं करता ऐसे श्री गुरुवर को,
प्रभू से पूर्व वन्दना करता, ऐसे जग कल्याणी को,
मार्ग प्रशस्त कर दिया मेरा हटा के पथ के कांटों को,
लोकिक और परलोकिक सुख का मार्ग बताया मुझको,
मैं कृतज्ञ हूँ अन्त नहीं है, उनकी कृपा का कोई
बार-बार में हृदय से कहता गुरु समान दाता नहीं कोई ।।

(15)

मालिक तेरे अन्दर है

तू जिसको खोज रहा वन्दे वह मालिक तेरे अन्दर है
बाहर के मन्दिर कृत्रिम है सच्चा मन्दिर तो अन्दर है
ले पत्र, पुष्प, जल, दीप, धूप तू किसकी पूजा करता है
सचमुच जिसकी पूजा होती वह दिव्य देव तो अन्दर है
धोने को अपना पाप मैल क्यों तीर्थों बीच भटकता है
जिससे सब पाप मैल धुलता वह विमल तीर्थ तो अन्दर है
ग्रन्थो पंथों का गौरव तू चिल्ला चिल्लाकर गाता है
जिससे झट ग्रन्थि भेद होता, वह अलख ग्रन्थ तो अन्दर है
बिनलक्ष्य की दौड धूप परिणाम न कुछ भी लायेगी
वह बाहिर कैसे मिल सकती जो चीज आप के अन्दर है
बाहर के झंझट छोड़, जोड़ चंदन अपने से अपने को
जिसको बन्दन है बार बार वह चिदानन्द तो अन्दर है ।

(16)

जो जन्मा है उसे मरना ही पड़ेगा

इस जग में जो जन्मा है उसे मरना ही पडेगा ।
संसार के सुख दुःख सव भरना ही पड़ेगा ॥
यह मनुष्य जन्म मुक्ति के पाने का साधन,
जब मिल भी गया, क्यो न करे आत्म आराधना,
इन कर्मो के समूहों से लडना ही पडेगा ॥ इस जग मे जो जन्मा

अरिहन्त, सिद्ध भूल न जाना हे पुजारी ।
विषयों में खोया तो कुमति है तिहारी
सत्गुरू कहे, शिव मार्ग पर चलना ही पड़ेगा ॥ इस जग मे जन्मा

(17)

मुसाफिर क्यों पड़ा सोता

मुसाफिर क्यों पड़ा सोता, भरोसा है न इक पल का ।
दमा दम बज रहा डंका, तमाशा है चला चल का॥

सुबह जो तख्ते शाही पर बड़े सजधज के बैठे थे ।
दुपहरे वक्त मे उनका,/हुआ है वास जंगल का ॥ १ ॥

कहां है राम और लक्ष्मण, कहा रावण सा बलधारी ।
कहाँ हनुमन्त सा योद्धा, पता जिनके न था बलका ॥ २ ॥

उन्हीं को काल ने खाया तुझे भी काल खायेगा ।
सफ़र सामान उठकर तू बनाले बोझ को हल्का ॥ ३ ॥

जरा सी जिन्दगानी पर न इतना मान कर मूरख ।
यह बीते जिन्दगी पल मे कि जैसे बुद बुदा जलका ॥ ४ ॥

नसीहत मानले ज्योती, उमर पल पल में कम होती
जपन कर आज जिनवर का, भरोसा कुछ नहीं कल का ॥ ५ ॥

(18)

आत्म कीर्तन

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर लाल जी वर्णी

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता दृष्टा आतम राम ।
मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान ॥
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान ॥ १ ॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशा-वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥ २ ॥
सुख दुख दाता कोई न जान, मोह राग ही दुःख की खान ।
निज को निज पर को पर जान, फिर दुख का नहि लेश निदान ।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्याग पहुँचूं निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम ॥ ४ ॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का क्या करता काम ।
दूर हटो पर कृत परिणाम, ज्ञायक भाव लखूं अभिराम ॥ ५ ॥

(19)

दुःख भी मानव की सम्पत्ति है

दुःख भी मानव की सम्पत्ति है . .
दुःख भी मानव की सम्पत्ति है, तू क्यों दुःख से घबराता है ॥

दुःख आया है तो जावेगा, सुख आया है तो जायेगा ।
दुःख जावेगा तो सुख देकर, सुख जायेगा तो दुःख देकर ॥
सुख देकर जाने वाले से, रे मानव क्यो भय खाता है ॥ १ ॥ दुख भी

सुख में है व्यसन प्रमाद भरे, दुःख में पुरुपार्थ चमकता है,
दुःख की ज्वाला मे तपकर ही, कुन्दन सा तेज चमकता है ।
सुख मे सब भूले रहते हैं, दुःख सबकी याद दिलाता है ॥ २ ॥ दुख भी

सुख सध्या का वह लाल क्षितिज, जिसके पश्चात् अंधेरा है,
दु:ख प्रात: का झुटपुटा समय जिसके पश्चात् सवेरा है
दु:ख का अभ्यासी मानव ही, सुख पर अधिकार जमाता है ॥ ३ ॥ दुख भी
दु:ख के सम्मुख जो सिहर उठे उसको इतिहास न जान सका,
जो दु:ख में कर्मठ धीर रहे उनको ही जग पहिचान सका,
दु:ख एक कसौटी है जिस पर, यह मानव परखा जाता है ॥
दु:ख भी मानव की सम्पत्ति है तू दु:ख से क्यों घबराता है ।

(20)

प्रभु दर्श करके आज घर जा रहे हैं

प्रभु दर्श करके, आज घर जा रहे हैं,
झुका तेरे चरणो मे सिर जा रहे हैं ॥

यहाँ से कभी न दिल जाने को करता
करे कैसे जाये बिना भी न सरता,
अगर चे हृदय नयन भर आ रहे हैं,
झुका तेरे चरणो मे सिर जा रहे हैं ॥

हुई पूजा भक्ति न कुछ सेवकाई
न मन्दिर मे बहुमूल्य वस्तु चढाई
यह खाली फकत जोर कर जा रहे हैं
झुका तेरे चरणोंमें सिर जा रहे हैं ॥

सुना है तुमने तारे अधम चोर पापी,
न धर्मी सही फिर भी तेरे हैं हामी।
हमें भी तो करना अमर, जा रहे हैं
झुका तेरे चरणो मे सिर जा रहे हैं ॥

बुलाना यहाँ फिर भी दर्शन को अपने
सुमन तुम भरोसे लगे कर्म हरने।
जरा लेते रहना खबर जा रहे हैं
झुका तेरे चरणो मे सिर जा रहे हैं ॥

(21)

गुण गाथा गायें हम

गुण गाथा गायें हम, निश दिन तेरी भगवन,
चरणो में आज तेरे, अर्पण है तन मन धन ।
कुछ भी नहीं मेरा है जो है सब तेरा है ।
तेरे बिन इस जग मेचहूँ ओर अंधेरा हैं ॥
संसार के दिनकर को शत शत मेरा वन्दन,
निर्लेप, निरंजन तुम, अविनाशी पद पाये ।
सुर नर मुनिवर ने भी मंगलमय गुण गाये,
त्रैलोक्य के नाथ मेरे, भव भव के दुःख भन्जन ॥
तुम सम मैं बन जाऊँ मैं ओर न कुछ चाहूँ,
प्रीति के पुष्प तुम्हें, अर्पित कर निज पाऊं ।
चौरासी में भटका, काटो मेरे बन्धन । गुण गाथा ॥

(22)

तुम हो तारण तरण

तुम हो तारण तरण मेटो जामन मरण अब हमारा ।
पाया वीर प्रभू का सहारा ॥
कर्म बैरी ने मुझको सताया-चारो गतियों में भव भव भ्रमाया,
दीने दुखड़े घने कहते कुछ न बने कष्ट सारा ॥ पाया वीर प्रभू . ....
माया मद मे रहा मैं दीवाना ।
सच्चा वस्तु स्वरूप न जाना
पर में रमता रहा आहें भरता रहा जीवन सारा ॥ पाया वीर प्रभू
अब तो शरणा में आये तुम्हारी, प्रभुजी मिट जाये व्यथायें हमारी
याते आये शरण पकडूं तेरे चरण कर दो पारा ॥
पाया वीर प्रभू का सहारा ॥ तुम हो तारण तरण .

मंगल गीत

सबका मंगल, सबका मंगल, सबका मंगल होय।
इस जगती पर जितने प्राणी सबका मंगल होय॥

॥ सबका मंगल होय॥

दुखिया कोई रहे न जग में, सुखिया सब संसार हो।
रोग, शोक, दुःख दारिद भागे, घर-घर मंगलाचार हो,
सुखी सभी नर-नार हो

॥ सबका मंगल होय ॥

दृश्य-अदृश्य सभी जीवों के, समता संबल होय ।
पाप नशे, पुण्योदय होवे, आतम दर्शन होय,
सम्यक् दर्शन होय

॥ सबका मंगल होय ॥

जलचर, थलचर और गगनचर, सबका ही कल्याण हो ।
जन्म मरण के बंधन छूटे, कर्मकटे निर्वाण हो ॥
सबको सम्यक्ज्ञान हो

॥ सबका मंगल होय ॥

..

खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती में सव्वभूयेसु, वेरं मज्झं ण केण वि ।

(मैं) सब जीवो को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझको क्षमा करें, मेरी सब प्राणियो से मित्रता (है), किसी से भी मेरा बैर नही (है) ।